ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जीवन वृत्तान्त

श्री गुरू अरजन देव जी

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़
Website : www.sikhworld.info

नोट: यहां दी गई सारी जानकारी लेखक के अपने निजी विचार हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लेखक के विचारों से सहमत हों।

जीवन वृतांत

श्री गुरू अरजन देव जी

श्री गुरू अरजन देव जी का प्रकाश (जन्म) संवत 1620 की 3 बैशाख तद्‌नुसार 15 अप्रैल सन् 1563 को गोइंदवाल नामक स्थान पर श्री गुरू रामदास जी के गृह श्रीमती भानी जी के उदर से हुआ। वे गुरू रामदास के सबसे छोटे तथा तीसरे पुत्र थे।

बालक अरजन देव जी ने नाना गुरू अमर दास जी तथा पिता (गुरू) राम दास जी, इन दो महान विभूतियों की छतर-छाया में अपना बच्चपन व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त किया। वाणी के महारथी गुरू अमरदास का सहज स्नेह पाकर अरजन देव जी कृतार्थ हुए। अरजन देव अपनी बाल-सुलभ चेष्टाओं से कभी अपनी माता को, कभी पिता को तथा कभी नाना गुरू को हैरान एवं प्रसन्न करते रहते थे। मित्र मण्डली में अत्यन्त शलिन और सौभ्य ढंग से अपनी बाजी को स्थापित करते हुए विजयोल्लास का प्रसाद सब में समान रूप में बांट देते थे। बाल क्रीड़ाओं के दौरान प्रकट हुई अरजन देव की समता की भावना ने आगे चलकर समूची गुरू संगत को प्रभावित किया।

एक बार नाना गुरू अमरदास जी अपनी शय्या पर ध्यानास्थ थे। तभी बाल अरजन अपने साथियों सहित प्रांगण में गेंद खेल रहे थे। सहसा गेंद उछली और गुरूदेव के आसन के समीप कहीं जा गिरी। इधर-उधर देखने के उपरान्त बाल अरजन के मन में विचार आया कि कहीं गेंद नाना जी के आसन पर न गिरी हो? फिर क्या था, बालक अरजन ने गुरूदेव की शय्या तक उछलने का प्रयास किया। सुगठित शरीर का बालक अरजन ठीक ढंग से लपक नहीं पाया। शायद नाना गुरूदेव की वह समाधि भंग नहीं करना चाहते थे। बहुत सोचने के उपरान्त अरजन देव ने शय्या के पाये पर पैर रख कर उछल कर शय्या पर झांकने का प्रयास किया किन्तु गुरूदेव का आसन डोल गया तभी गुरूदेव की योगनिंद्रा टूटी। उन्होने मीठे वचनों में कहा - अरे यह कौन महान विभूति है! जिसने हमारी सारी की सारी सत्ता ही हिला दी है। बाल अरजन कुछ सहम कर थोड़ा पीछे हटे, परन्तु विशाल हृदय के स्वामी, क्षमाशील और कृपालु नाना ने नन्हें, अरजन देव को बाहों में समेट लिया और दुलार से कहा - अरजन समय आयेगा जब तुम कोई महान कार्य कर दिखाओंगे। जिससे मानव कल्याण होगा।

बाल्यकाल

अरजन देव बालक थे जिन्हें बाल्यकाल से आध्यात्मिक ज्ञान धरोहर में मिलना प्रारम्भ हो गया क्योंकि समस्त बच्चपन उनका नाना श्री गुरू अमर दास जी की देखव-रेख में व्यतीत हुआ। गुरू गोदी में पले अरजन देव जी का स्वभाव अपने दोनों बड़े भाईयों से भिन्न था। वह अपने पिता श्री राम दास जी की तरह सदैव समार्पित रहते और निष्ठा वान सेवक की तरह आज्ञा पालन के लिए तत्पर दिखाई देते। इन विशेष गुणो के कारण नाना-दोहता का स्नेह इतना प्रगाढ रूप धारण कर गया कि स्वयं गुरूदेव ने उन्हें वाणी कंठ करवानी प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार अरजन देव जी के हृदय मे भक्ति काव्य के प्रति रुची जागृति हो गई उन्होंने राग विद्या, छंदा बन्दी इत्यादि करने की कला भी सीखी यह देखकर नाना गुरूदेव ने भविष्य वाणी की :- 'दोहता-बाणी का बोहिथा' अर्थात वाणी का जहाज।

श्री अरजन देव जी को सांसारिक शब्द-बोध गोइंदवाल की पाठशाला से प्राप्त हुआ। गुरूमुखी अक्षरों का ज्ञान आप को नाना गुरू अमरदास जी ने दिया तथा आरंभिक शिक्षा बाबा बुड्‌ढ़ा जी के संरक्षण में हुई। संस्कृत भाषा का ज्ञान आपने पण्डित वेणी जी से प्राप्त किया। इस के अतिरिक्त आप को राग विद्या में बहुत रूची थी। अत: आपने गुरूघर के कीर्तनियों से समय-समय कीर्तन का अभ्यास किया। आप जी ने चित्रकला से भी निपुणता प्राप्त की तथा शस्त्र विद्या मे भी बहुत लगाव था। आप अवकाश के समय अपने सहपाठियों के संग कसरत करते, शस्त्र चलाने का अभ्यास करते तथा घोड़ सवारी करने की प्रतियोगिता में भाग लेते। वास्तव में आप बहुमुखी प्रतिमा के स्वामी थे।

आप को बचपन से ही ईश्वर भक्ति के प्रति एक विशेष लगाव था। पुत्र की यह ईश्वर प्रति आस्था देखकर आप के अभिभावक (माता-पिता) मन ही मन अत्यंत हार्षित होते रहते थे। जब आप किशौर अवस्था से युवास्था में अग्रसर हुए तो प्रकृति ने आप को सुन्दर और आकर्षक छवि प्रदान की। कद-पीठ की दृष्टि से लम्बे व भारी निकले। आप के ललाट पर तेजस्व और नयनों मे एक विशैष प्रकार के ज्योति पुंज के दर्शन होते। आप के होटों पर सदैव एक मीठी मुस्कान दृष्टि गौचर होती अत: आप मधुर भाषी व्यक्तित्व के स्वामी थे।

पिता गुरू रामदास की भांति पुत्र अरजन देव भी स्वार्थ से दूर केवल त्याग की भावना से ओत-प्रोत रहते। विनम्रता उनका सबसे बड़ा गुण था। सेवा-कार्यो मे उन्हें भी बड़ा आनंद मिलता। पिता की आज्ञा पाते ही वे हर तरह के कामों मे संलग्न हो जाते। यही तो कारण था, आज्ञाकारी पुत्र के प्रति पिता गुरू रामदास जी को असीम लगाव हो गया।

विवाह

धीरे-धीरे श्री अरजन देव जी ने 16वें वर्ष मे पदार्पण किया। इस आयु तक उन्होंने अपने क्रिया-कलापों से सबका हृदय जीत लिया था। अब माता श्री भानी जी को पुत्र के विवाह की चिन्ता हुई। उन्हीं दिनों जालंधर जिलान्तर्गत गांव मऊ के निवासी श्री किशन चंद जी अमृतसर नगर से श्री गुरू रामदास जी के दर्शनों को आये। उन्हें युवक गुरू सुपुत्र श्री अरजन देव जी भा गये। उनके हृदय में एक कल्पना ने जन्म किया कि मेरी बेटी कुमारी गंगा देवी का यदि रिशता यहां हो जाए तो उस जैसा सौभाग्यशाली कोई और नहीं हो सकता। इस कल्पना को साकार करने के लिए वह गुरूदेव के समक्ष अपना निवेदन रूपी प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुए। गुरूदेव ने अपने भक्त के प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लिया। इस प्रकार श्री अरजन देव जी के विवाह की तैयारियां प्रारम्भ हो गई। बारात मंऊ गांव पहुंची। वहां उनका भव्य स्वागत किया गया। उन दिनों की प्रथा अनुसार दुल्हे को ससुराल में प्रवेश पाने से पहले घोड़ी पर बैठे-बैठे ही एक भाले (नेजे) से धरती में दबी लोहे की कील उखड़नी होती थी। श्री अरजन देव जी ने अपनी निपुणता का परिचय देते हुए अपने भाले से एक ही झटके से कील नुमा 'जंड' के वृक्ष की लट्‌ठ को उखाड़कर फेंक दिया, जिससे चारों ओर तातियां बजने लगी। वास्तव में गांव के लोगों ने चतुराई दिखाई थी, कील के स्थान पर लट्‌ठ गहरा गाड़ दिया था। चारों ओर विजय का उल्लास था किन्तु श्री अरजन देव शांत और नम्रता की मूर्ति बने रहे। भोजन उपरान्त जब फेरों का समय हुआ तो स्थानिय पण्डितों ने सिक्खों से मत-भेद उत्पन्न कर लिया और फेरे करने से साफ इन्कार कर दिया।

तब श्री गुरू रामदस जी गम्भीर हो गये और उन्होंने कुछ सोचने के पश्चात् सदैव के लिए परोहितों से पिंड छुड़वाने की युक्ति पर कार्य करने की सोची बस फिर क्या था? आप जी ने तुरन्त दूल्हा-दूल्हन को दूसरे स्थान पर ले चलने का आदेश दिया और वहां हवन कुण्ड के स्थान पर गुरूवाणी की पोथी स्थापित कर दी और उस पोथी, जो कि ज्ञान का भण्डार है, को आधार मान कर भावी दम्पति के चार फेरे लगवाए। प्रत्येक फेरे पर स्वयं गृहस्थ आश्रम में प्रवेश पाने की और उज्जवल आचर्ण की शिक्षा देते और वाणी उच्चारण करते, तद्‌पश्चात उसी वाणी को कीर्तनीयों तथा संगत को सामुहित गायन करने के लिए कहते। इस प्रकार उन्होंने प्रवृति कर्म और निवृति कर्म करने की व्याखया करके विवाह सम्पूर्ण कर दिया।

श्री गुरू रामदास जी का बड़ा पुत्र पृथी चन्द सांसारिक दृष्टि से बहुत चतुर-बुद्धिमान व प्रबन्धकीय कार्य में निपुण था। अत: उसने स्वयं ही गुरू दरबार का प्रबंध चलाने और नये नगर (अमृतसर) के निर्माण का कार्यभार अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार आय-व्यय का सारा हिसाब उसके हाथों मे आ गया। वह यह सारी सेवा बहुत योग्यता से निभाने का अभिनय करने लगे परन्तु उनके मन में सच्ची परमार्थिक सेवा भावना न थी। वास्तव में उनकी सारी सेवा का लक्ष्य गुरू पद को प्राप्त करना था। इसके विपरीत श्री अरजन देव जी की जीवन शैली में बहुत भिन्नता थी। उनका जीवन निष्काम सेवा भाव से ओत-प्रोत था। वह आध्यात्मिक दुनियां के पांधी थे उनका लक्ष्य सदैव शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति रहाता। वह कर्म योगी होकर समर्पित भावना से कार्यरत रहते। श्री गुरू राम दास जी की पैनी दृष्टि से कुछ छिपा नहीं था। इसलिए उनका प्रेम व लगन श्री अरजन देव के प्रति अधिक था। यह सब देखकर पृथीचंद अपने छोटे भाई अरजन से बहुत ईष्या करते रहते। उनको बार-बार यही विचार सताता रहता कि कहीं पिता जी अपना उत्तराधिकारी मेरे छोटे भाई अरजन को न घोषित कर दे। अत: उन्होने षड्‌यन्त्र रचने प्रारम्भ कर दिये। सर्व प्रथम उन्होंने गुरू घर के कोष पर एकाधिकार कर लिया। तद्‌पश्चात उन सभी प्रचारकों (मसंदो) के संग साठ-गांठ प्रारम्भ कर ली जो कोई प्रतिष्ठा प्राप्त थे। इस में लक्ष्य यह रखा गया कि वे लोग गुरूदेव के समक्ष पृथी चंद को गुरू गद्दी देने की सिफारिश करेंगे।

दूसरी तरफ श्री अरजन देव जी ने बाल्यकाल से ही अपने पिता श्री गुरू राम दास जी को नाना गुरू अमर दास जी की सच्ची भक्ति, निष्काम सेवा में सलग्न देखा था। वह जानते थे कि पिता जी ने अपना निजी अहम् का परित्याग कर के सच्चे कर्म योगी बनकर आध्यात्मिक दुनियां में प्राप्तियां की है इसलिए वह अपने पिता श्री के पद्‌चिन्हों पर चलते हुए इसी दिव्य मार्ग का अनुसरण कर रहें थें।

'गुरू का चक्क' (अमृतसर) नगर के निर्माण के दौरान पिता गुरू को अपने तीनों पुत्रों के स्वभाव और प्रकृति को निकट से परखने का अवसर प्राप्त हुआ। श्री अरजन देव के दोनों भाइयों की प्रवृति भिन्न-भिन्न थी। श्री पृथी चन्द जी अधिक भौतिक और आर्थिक प्राप्तियों की लालसा करने वाले पदार्थवादी और मंजले भाई महादेव जी प्राय: विरक्त भाव से विचरण करने वाले उनके लिए मानों किसी भी सेवा-संकल्प का कोई अर्थ ही नहीं केवल श्री अरजन देव जी ही पिता श्री के पुण्य पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए दिव्य जन-सेवा, नाम-स्मरण, कीर्तन तथा गुरू भक्ति में तल्लीन रहते। अन्तर्यामी गुरू ने अनुभव किया, पारब्रह्म ने जिस खरे सोने से अरजन को आलोकमान (प्रकाशित) किया है, उसकी तो झलक मात्र भी दूसरे पुत्रों में विद्यमान नहीं। ब्रह्म विद्या के ज्ञाता गुरूदेव ने अपना विवेकी निर्णय कर दिया। किन्तु एक परीक्षा रखी जिसे समाज के समक्ष नीर-क्षीर (दूध-पानी) का निर्णय हो जाए।

लाहौर प्रस्थान

इन्हीं दिनों श्री गुरू राम दास जी के परिवार में ताऊ सिहारीमल जी के लड़के का शुभ-विवाह निकट आ गया। वह लाहौर से अमृतसर पहुंचे और उन्होने गुरूदेव से निवेदन किया कि वह अपने भतीजे के विवाह में सम्मिलित होने के लिए लाहौर पधारनें का कष्ट

करें किन्तु गुरूदेव ने उन्हें कहा कि वह स्वयं न आ सकेगें क्योंकि उनके वहां पहुंचने पर स्थानीय संगत दर्शनों को उमड़ पड़ेगी। जिसे विवाह समारोह में बिघन-बाधा उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहेगी। अत: वह अपने स्थान पर अपने पुत्रों में से किसी एक को भेज देगें जो उन का प्रतिनिधित्व करेगा। इस बात पर सन्तुष्ट होकर सिहारीमल जी लोट गये।

गुरूदेव ने अपने सबसे बड़े पुत्र पृथी चंद को लाहौर जाने का आदेश दिया किन्तु उनकी आशा के विपरीत पृथी चंद ने बहुत से बहाने बनाकर आना- कानी शुरू कर दी। उसने गुरूदेव से कहा कि निर्माण-कार्य में लाखों का लेन-देन है, इतने बड़े काम को छोड़ कर वह लाहौर कैसे जा सकता है। गुरूदेव बड़े पुत्र का उतर सुनकर मौन हो गये। पुन: उन्होंने अपने मझले पुत्र श्री महादेव जी को उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आदेश दिया। महादेव जी ने उत्तर दिया आप मुझे सांसारिक झमेंलों मे न ड़ाले, मेरे लिये यह विवाह आदि उत्सव महत्व हीन है। इस पर गुरूदेव ने अपने छोटे पुत्र अरजन देव जी को बुलाकर आदेश दिया कि बेटे तुम हमारे स्थान पर लाहौर अपने ताऊ जी के घर विवाह समारोह में सम्मिलित होने चले जाओ। श्री अरजन देव जी निमन्त्रण की बात सुनकर गद्‌गद हो उठे। पिता श्री के चरणों में नमस्कार कर के बोले यह तो बहुत प्रसन्नता की बात है। आप मुझे उत्सव में भाग लेने के लिए आदेश दे रहे है। मेरा परम सौभाग्य होता यदि आप मुझे किसी बड़ी विपति का सामना करने के लिए कहीं भी जाने का आदेश देते।

गुरूदेव, युवक अरजन की नम्रता, गुरू-आदेश के प्रति दृढ़ निष्ठा देखकर अति प्रसन्न हो उठे। उनके मन से एक बड़ा बोझ उत्तर गया।

लाहौर प्रस्थान के समय उन्होंने बेटे अरजन को पुन: संकेत दिया, विवाह सम्पन्न होने पर वहीं संगत सेवा का कार्य सम्भालना है, पुत्र! इधर लौटने के लिए सुचना भेजी जायेगी। आज्ञाकारी विनम्र अरजन देव ने पिता श्री को नमस्कार किया और लाहौर प्रस्थान कर गये।

लाहौर उन दिनों भारत का प्रसिद्ध नगर तथा प्रमुख व्यापारिक व राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र था। आगरा के बाद इसी नगर का नाम था। विवाह के सुखद वातावरण से मुक्त होने पर श्री अरजन देव जी ने लाहौर में धर्म-प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया। जिस पुण्य स्थल पर पिता श्री गुरू राम दास जी का प्रकाश (जन्म) हुआ था, उसी चूना मण्डी को अरजन देव जी ने अपना कीर्तन-स्थल बनाया। उन दिनों लाहौर नगर में आध्यात्मिक दुनियां के बहुत से प्रमुखी निवास करते थे। उन पीरो, फकीरों में से एक साई मीयां मीर जी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्ति थे जिन की भेंट युवक श्री अरजन देव से हुई वह अरजन देव जी के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए कि धीरे-धीरे यह निकटता प्रगाढ मित्रता में परिवर्तित हो गई। श्री अरजन देव जी को कादरी सिलसिलें के प्रमुख शाह विलावल जी भी यही मिले। शाह हुसैन, छज्जू, काहना और पिल्लू जी भी लाहौर में ही स्थाई रूप से रहते थे और अपनी धार्मिक गतिविधियां बनाये रखते थे।

कीर्तन और संगत-सेवा के बाद श्री अरजन देव जी का अधिकांश समय पीरों और फकीरों से विचार-विनिमय मे ही व्यतीत होता। इन विचारों के अदान-प्रदान के प्रमुख विषय होते-सच्चा धर्म संकीर्णता (तंग दिली) नहीं, सहिष्णुता है, सब संप्रदायों में एक ही दिव्य ज्योति का दर्शन विद्यमान है इत्यादि।

नित्य कर्म में श्री अरजन देव जी अपनी भक्तजनों की मण्डली के संग कीर्तन करने का अभ्यास करते तद्‌पश्चात आये हुए भक्त जनों में गुरू-उपदेश को अधार बना कर प्रवचन करते। जनसाधारण श्री अरजन देव का सन्निध्य पाकर कृतार्थ हो जाते। इस प्रकार उनका ऐसा सुनाम हुआ कि प्रतिदिन उनके चूना मण्डी आश्रय में बहुत भारी संख्या में संगत होती और सारा वातावरण प्रभु भक्ति से सराबोर हो जाता।

लाहौर में दो माह का समय बिताते समय श्री अरजन देव को अपने पिता गुरूदेव का भव्य चेहरा उन्हें नजर आता। अत: उनसे मिलने के लिए पुत्र का हृदय हमेशा मचलता रहता। इसके बावजूद वह पिता श्री के पास तब तक नहीं जाना चाहते थे जब तक उनकी तरफ से लोटने की आज्ञा प्राप्त न हो जाये। लम्बे वियोग और परिवार के अन्य सदस्यों से दूर रहने के कारण श्री अरजन देव का कोमल मन सम्वेदनशीलता की चर्मसीमा पर पहुंच गया। पिता श्री के दर्शनों की अभिलाषा मन में विरागमय वाणी की उत्पती करने लगी। वियोग की पीड़ा आत्मीय काव्य बनकर कलम द्वारा कोरे कागज़ पर प्रकट हो गयी। इस प्रकार अरजन देव जी ने भावुकता में पिता गुरूदेव को एक पत्र लिख ही डाला।

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई।।
बिलप करे चात्रिक की निआई।।
त्रिखा न उतरै सांति न आवै।।
बिनु दरसन संत पिआरे जीउ।।
जाउ घोलि घुमाई गुर दरसन संत पिआरे जीउ।। रहाउ।।

इस पत्र को उन्होंने एक निकटवर्ती सेवक को देकर अमृतसर अपने पिता को भेज दिया। जब यह सेवक पत्र लेकर अमृतसर पहुंचा तो गुरूदेव जी अपने महलों में थे उस समय दरबार की समाप्ति हो चुकी थी अत: सेवक ने वह पत्र गुरूदेव के बड़े पुत्र पृथीचंद

को दे दिया और कहा – आप मुझे इस का उत्तर लाकर दे। पृथी चंद ने जैसे ही वह काव्य रूप पत्र पढ़ा तो वह अरजन देव जी की प्रतिभा का अनुमान लगाकर ईर्ष्या से जल उठा वह विचारने लगा यदि यह पत्र पिता जी के हाथ लग जाता तो वह अरजन को योग्य जानकर गुरू गद्दी देने का मन बना लेंगे वैसे भी वह अरजन को मुझ से कहीं अधिक स्नेह करते है। क्या अच्छा हो की पिता जी को यह पत्र दिखाया ही न जाये और संदेश वाहक को यहां से टूका दिया जाये। उसने ऐसा ही किया – अवकाश के समय के पश्चात सेवक को कहा – पिता जी ने अरजन के लिए कहा है कि वह कुछ दिन और वहां रह कर सिक्खी प्रचार करें, हमें जब आवश्यकता होगी बुला लेंगे। संदेश लेकर सेवक लोट आया। किन्तु अरजन देव जी एकान्त क्षमों में विचार मग्न सोचते – क्या पिता श्री उनकी सेवा भव से सन्तुष्ट नहीं है? अत्यन्त कशमकश क्षणों के क्षणों में अपनी वेदना को सरल शब्दो में काव्य रूपी आत्मीय पत्र पिता गुरूदेव के चरणें में आर्पित करने के लिए रच डाले। उन्हें पहले पत्र के अनुसार बुलावे की लम्बे समय तक प्रतीक्षा रही परन्तु पिता श्री की ओर से कोई संदेश वाहक अमृतसर से लाहौर नहीं पहुंचा पृथीचंद की दृष्टि उस सेवक पर पड़ गई। चतुर पृथी चंद ने सेवक को बहला–फूसला कर उस से पत्र प्राप्त कर लिया और कहा – मैं अवकाश के समय गुरूदेव से इस विषय में बात करूगां किन्तु पत्र पढ़ कर उसको अहसास हुआ कि यह पद्य रचना बिलकुल पहले गुरूजनों जैसी है कहीं पिता गुरूदेव ने पढ़ लिए तो मैं कहीं का नहीं रहूगां। इस पत्र की पद्य रचना इस प्रकार थी।

तेरा मुखु सुहावा जीउ, सहज धुनि बाणी।।
चिरु होआ देखे सारिग पाणी।।
धंनु सु देखु जहां तूं वासिआ मरे सजण मीत मुरारे जीउ।।
हउ धोली हउ धोलि घुमाई गुर संजण मीत मुरारे जीउ।।

इस बार भी पृथी चन्द ने संदेश वाहक को बहुत चतुराई से पिता गुरूदेव की ओर से उत्तर में कहा – अरजन को अभी कुछ समय लाहौर में गुरमति का प्रचार–प्रसार करना चाहिए जैसे ही हमें उसकी आवशयकता होगी हम स्वयं उसे संदेश भेजकर बुला लेगे, वैसे हम उसके कार्यो से बहुत संतुष्ट है उससे कहे किसी प्रकार की चिंता न करे। इस प्रकार पृथी चंद ने दूसरा पत्र भी गुरुदेव को नहीं दिखाया और उसे छिपा कर रख लिया।

अपनी आशा के विपरीत उत्तर पाकर श्री अरजन देव विचलित नहीं हुए उन्होंने बहुत धैर्य से काम लिया अपने मुख्य उद्देश्य में समय व्यतीत करते हुए प्रतीक्षा की घड़ियां गिनने लगे। किन्तु अब समय काटते–कटता नहीं था। इस बार के हृदय में शंका ने जन्म लिया वह विचारने लगे पिता श्री अपने लाड़ले से इतने अप्रसन्न नहीं हो सकते कि वह उसे भूल ही जाये अथवा अपने से दूर रखे। अवश्य ही भ्राता पृथी चन्द जी ने पत्र गुरूदेव को दिये ही नहीं अत: उनके मन में अनेक प्रकार की सम्भावनाएं कुरेद–करेद जाती। पुन: मिलन की आकांक्षा में उनका हृदय इस कदर तड़प जाता कि उनकी कलम फिर उठी और एक अन्य पत्र बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति करते हुए लिख डाला।

इक घड़ी न मिलते ता कलि जुगु होता।।
हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु मगवंता।।
मोहि रैणि न विहावै नदि न आवै।।
बिनु देखे गुर दरबारे जीउ।।3 ।।
जउि घोलि घुमाई तिसु सचे गुर दरबारे जीउ।।

इस बार यह पत्र श्री अरजन देव जी ने संदेश–वाहक को देते समय उसे सर्तक किया और कहा– इस पत्र को केवल पिता श्री गुरूराम दास जी के हाथों में ही सौपना है। किसी अन्य व्यक्ति को नहीं देना। दूसरी तरफ पृथी चन्द गुरू गद्दी प्राप्त करने के लिए षड्यन्त्र रच रहा था। उस के समक्ष नाना गुरूदेव अमर दास जी की वह भविष्य वाणी सहज भाव से कह दी थी कि बेटा तेरी आयु सिमित लगभग साढ़े छ: वर्ष शेष है। इसी भविष्य वाणी को आधार मान कर पृथी चंद गुरू गद्दी प्राप्त करने के लिए छल–कपट का रहस्यमय वातावरण रच रहा था ताकि गुरू पिता जी से किसी प्रकार भी अरजन को दूर रखा जाये उसकी गणना के हिसाब से पिता श्री के जीवन के लगभग कुछ दिन ही शेष थे।

वह चाहता था कि गुरू गद्दी उसी को प्राप्त हो। ऐसा तभी सम्भव था किसी प्रकार श्री अरजन देव जी गुरूदेव की निकटता प्राप्त न कर सके। परन्तु अन्तर्यामी, आन्तरिक लीला से पूर्णतय परिचित गुरू–पिता सब कुछ देख रहे थे।

गुरू गद्दी की प्राप्ति

इस बार सावधानी पूर्वक संदेशवाहक ने पृथीचंद की दृष्टि बचाकर तीसरा पत्र श्री गुरू राम दास जी के हाथों में सजे हुए दरबार में दे दिया। पत्र पढ़ते ही श्री अरजन देव की वाणी गुरूदेव के अन्तर्मन को झिझोड़ गई। पुत्र के लिए सहज स्नेह उमड़ पड़ा। उन्होंने तुरन्त अरजन देव को अमृतसर बुलवाने का प्रबन्ध किया। किंतु यह क्या? पत्र पर तो तीन अंक लिखा हुआ है? क्या इससे पहले भी अरजन ने हमारे लिए पत्र भेजे थे? उन्होंने संदेश वाहक से पूछा! इस पर उसने बताया कि मैं दो बार पहले भी पत्र लेकर आता रहा हूं। किन्तु

आपसे भेंट नहीं हो सकी अत: वह दोनों पत्र क्रमश: आपके बड़े सूपुत्र पृथीचंद जी को दिये है जिनका कि वह मुझे उत्तर भी देते रहे है कि अरजन देव के लिए पिता जी का आदेश है कि अभी कुछ दिन और वहां रह कर गुरूमति प्रचार करें हमें जब उसकी आवश्यकता होगी हम स्वयं संदेश भेज कर बुला लेंगे। तभी गुरूदेव ने पृथी चंद को बुला भेजा। पृथी चंद संदेश वाहक को देखते ही बुहत छटपटया और अनजान बनने का अभिनय करते हुए गुरूदेव से पुछने लगा। पिता जी मेरे लिए क्या हुक्म है?

तब श्री गुरू राम दास जी ने पृथी चंद से कहा - वे पत्र जो इस सेवक ने तुम्हें दिया हे कहां है, हमें क्यों नही दिखाये? पृथीचन्द के पास इस बात का कोई उतर नहीं था। वह बहाने बनाने लगा मुझे ध्यान नहीं आ रहा कि इस व्यक्ति ने मुझे कोई पत्र दिये है वास्तव में मैं काम-काज में बहुत व्यस्त रहा हूं इस लिए भूल हो सकती है। इस पर गुरूदेव ने कहा - ठीक है वे पत्र हमें तुरन्त दे दो। किन्तु पृथी चन्द मुक्कर गया वह कहने लगा पत्र मेरे पास है ही नहीं। गुरूदेव ने उसी समय एक सेवक को आदेश दिया कि आप पृथीचंद के घर जाये ओर उसकी पत्नी कर्मो से पृथीचंद का चौगा (कोट) मांग लाये। सेवक ने ऐसा ही किया। गुरूदेव ने सजे हुए दरबार में सेवक को आदेश दिया कि पृथी चंद के चौगे की तलाशी लो। तलाशी लेने पर उसकी जेब में से वे पत्र प्राप्त हो गये। इस पर पर पिता गुरूदेव से उल्झने लग गया और क्रोध में पिता श्री की मान मर्यादा के विरूध अपशब्द बोलने लगा। उसने कहा-यह साधारण पत्र ही तो है कौन सी हुन्डी है जिसे तुड़वाने पर उसे लाभ होने वाला था। आप भी बिना कारण मुझे नीचा दिखाना चाहते है इत्यादि। वातारण की गम्भीरता को देखते हुए गुरूदेव ने पृथीचंद को समझाने का प्रयत्न किया और कहा -

काहे पूत झगरत हउ संगि बाप।।
जिन के जणे बडीरे तुम हउ।।
तिन सिउ झगरत पाप।। 2।। रहाउ।।

सारंग म04, पृष्ठ 1200

किन्तु पृथी चंद पर इन स्नेह भरी बातो का कोई प्रभाव न हुआ वह धन और शक्ति के अभिमान में अंहकारी हुई बाते करता रहा जिस का तात्पर्य था कि वह गुरूपद बलपूर्वक प्राप्त कर सकता हे इत्यादि।।

यह सुनकर गुरूदेव ने उसे समझाने के पुन: प्रयत्न किया और कहा -

जिस धन का तुम गरबु करत हउ, से धन किसहि न आप।।
खिन महि छोडि जाइ बिखिआ रसु, तउ लागे पछूताप।।

राग सारंग महला 4, पृष्ठ 1200

ये तीनों पत्र पढ़कर श्री गुरू रामदास जी अपने छोटे पुत्र श्री अरजन की पितृ-भक्ति देखकर कायल हो गये। गुरूदेव के नेत्र प्रेम अथवा विराग में द्रवित हो गये उनका कंठ अविरूद्ध हो गया। यह दृश्य देखकर संगत अवाक रह गई। कुछ देर के पश्चात् उनका मन शांत हुआ तो उन्होंने गद्गद् स्वर मे उपस्थित जन-समुह को बताया।

बेटे अरजन की पितृ अथवा गुरू भक्ति अतुलनीय हैं। उसने मेरी आज्ञा का जिस श्रद्धा से पालन किया है उसका उदाहरण मिलना कठिन है। वह आज्ञाकारी, नम्रता की मूर्ति, अभिमान से कोसों दूर विवेकशील, ब्रह्मवेत्ता, शाश्वत ज्ञान से परिपूर्ण एक महान व्यक्तित्व का स्वामी है अत: वह ही हमारा उत्तराधिकारी होगा।

घोषण करते ही उसी समय आपने बाबा बुड्ढ़ा जी को लाहौर भेजा कि वह श्री अरजन देव को आदर सहित वापस ले आये और स्वयं उनको गुरूपद सौपने की तैयारी में जुट गये।

श्री अरजन देव जी जैसे ही अमृतसर पहुचे पिता गुरूदेव उनको लेने मार्ग मे मिले। पिता पुत्र की जुदाई समाप्त हुई श्री अरजन देव भागकर गुरूदेव के पुनीत चरणों में नत मस्तक हो गए। दबी पीड़ा अश्रुन्धारा में फूट पड़ी। सजल नेत्रों से पिता श्री के चरण घो डाले और हृदय वेदक वाणी में कह उठे। यह अरजन कितना अभागा है कि आप के पुनीत दर्शनों के लिये भी तरसता रहा। पिता श्री ने उनको उठाकर गले से लगाया और उनकी भीगी पलके सब कुछ मौन व्यक्त कर रही थी। उनका लाडला एक कठिन परीक्षा में सफल हुआ है। भला पिता के लिए इससे बड़ा गौरव और क्या हो सकता था अत: उन्होने अरजन के ललाट पर एक आत्मीय चुम्बन अंकित कर दिया।

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार गुरूदेव ने तत्काल दरबार सजाया और अपने प्रिय पुत्र को अपने निर्णय से अवगत कराया कि हम तुम्हें श्री गुरू नानक देव जी के पांचवें उत्तराधिकारी नियुक्त करते है। पुत्र को तो पिता गुरूदेव की आज्ञा का सम्मान करना ही था। इस लिए श्री अरजन देव जी ने कोई विरोध प्रकट नहीं किया। गुरूदेव ने उन्हें तुरन्त अपने सिंहासन पर बिठाकर परम्परा अनुसार बाबा बुड्डा जी द्वारा तिलक दिया और स्वयं गुरू मयार्दा अनुसार एक विशेष थाल में भेंट स्वरूप कुछ विशिष्ट सामग्री अर्पित करते हुए डण्डवत प्रणाम किया और समस्त संगत को आदेश दिया कि वह उनका अनुसरण करें। संगत ने गुरूदेव की आज्ञा का पालन करते हुए श्री अरजन को पांचवा गुरू स्वीकार कर लिया। किन्तु पृथीचंद ने बहुत बड़ा उपद्र करने की ठान ली। उसने कुछ मसंदो (मशनरियों) के साथ साठ-गांठ कर रखी थी। वह उनको लेकर गुरू दरबार में अपना पक्ष लेकर पहुंचा और गुरूदेव के समक्ष तर्क रखने लगा कि गुरू पद उसे मिलना चाहिए था क्योंकि वह हर दृष्टि से उसके योग्य है। इस पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों ने उसे समझाने का असफल प्रयास किया जिन में मामा गुरदास जी, माता भानी जी तथा बाबा बुड्ढ़ा जी भी सम्मित थे। सभी ने मिलकर उसे समझाया कि गुरूता गद्दी किसी की

भी विरासत नहीं होती, जैसे कि तुम जानते ही हो प्रथम गुरूदेव श्री गुरू नानक देव जी ने अपने पुत्रों को गुरू पद नहीं दिया जबकि वे दानों योग्यता की दृष्टि से किसी से कम नहीं थे। ठीक इसी प्रकार गुरू अंगद देव जी ने भी अपने सेवक को गुरिआई बख़्शी थी। वह सेवक कोई ओर नहीं तुम्हारे नानजी ही थे जो कि उनकी आयु से बड़े भी थे। बस और तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि तुम्हारे नाना श्री गुरू अमर दास जी ने भी समय आने पर गुरू पद तुम्हारे पिता जी को दिया है तो कि वास्तव में उनके सेवक थे। वह चाहते तो अपने बेटों को अपना उत्तराधिकारी बना सकते थे क्योंकि तुम्हारे मामा मोहन जी तथा मोहरी जी दोनो योग्य है किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

इन तर्कों के आगे पृथीचंद के पास कोई ठोस आधार नहीं बचा था। किन्तु वह अपनी हठधर्मी पर अड़ा हुआ था। वह गुरूदेव पिता जी से उल्झ गया कि आप ने मेरे साथ पक्षपात किया है मैं बड़ा हूं अत: आपको मुझे उतराधिकारी घोषित करना चाहिए था। गुरूदेव ने उसे समझाते हुए कहा – गुरू घर की मर्यादा है किसी पूर्ण विवेकी पूरूष को गुरूपद दिया जाता है यह दिव्य ज्योति है, किसी की विरासत वाली वस्तु नहीं इस लिए इस परम्परा के समक्ष तेरी नाराज़गी का कोई औचित्य नहीं बनता। किन्तु पृथी चंद अपनी हठधर्मी से टस-मस नहीं हुआ। उसका कहना था कि केवल आप मुझ में कोई कमी बता दें तो मै संतोष कर लूगां। इस पर श्री गुरू रामदास जी ने श्री गुरू अरजन देव जी द्वारा वह तीनों पत्र संगत के सममुख रख दिये और कहा - पृथीचंद यह पद्य अधुरे है इन को सम्पुर्ण करने के लिए कोई ऐसी रचना करो जिससे यह सम्पूर्ण हो जाये। अब पृथीचन्द के समक्ष एक बड़ी चुनौती थी किन्तु प्रतिभा के अभाव में वह कड़े प्रयास करने के पश्चात् भी एक शब्द की भी रचना नहीं कर पाया। अन्त में गुरूदेव ने श्री गुरू अरजन देव जी को आदेश दिया कि बेटा अब तुम्ही इस कार्य को सम्पुर्ण करो। इस पर श्री गुरू अरजन देव जी ने निम्नलिखित रचना कर के गुरूदेव पिता जी के सममुख प्रस्तुत की :-

भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ।।
प्रभु अबिनासी घर महि पाइआ।।
सेव करी पलु चसा ने बिछुड़ा जन नानक दास तुमारे जीउ
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई जन नानक दास तुमारे जीउ।।

इस नई रचना को देखकर पिता श्री गुरू रामदास जी व संगत अति प्रसन्न हुई, केवल दुखी हुआ तो पृथीचंद। वह सभी को कोसता रहा परन्तु कुछ कर नहीं पा रहा था।

श्री गुरू राम दास जी का निधन

ब्रह्मवेता श्री गुरू राम दास जी को ज्ञात था कि उन का अन्तिम समय निकट है अत: वह श्री गुरू अरजन देव जी व पत्नी श्री मती भानी जी को साथ लेकर गोईदवाल नगर प्रस्थान कर गये। वहां उन्होंने अपने साले मोहन जी तथा मोहरी जी को समस्त घटना क्रम से अवगत करवाया और पृथीचंद के व्यवहार को असंगत बताकर सब को सतर्क किया। स्वयं अगले दिन एकांत वास धारण कर लिया और उचित समय देखकर शरीर त्याग कर परम ज्योति में विलीन हो गये।

श्री गुरू रामदास जी के देहावसान का समाचार फैलते ही दूर-दूर से संगत गोईदवाल पहुंच गई। गुरू के चक्क (अमृतसर) से पृथीचंद और अन्य संगत भी बड़ी संख्या में गोईदवाल उमड़ पड़ी तभी गुरूदेव की अंत्येष्टि क्रिया सम्पन्न कर दी गई। उस समय भावुक श्री गुरू अरजन देव जी ने निम्नलिखित रचना का उच्चारण किया :-

सूरज किरणि मिली जल का जलु हूआ राम।।
जोती जोति रली संपूरन थीआ राम।।
बहम दीसै बहम सूणीऐ एकु एकु वखाणीऐ।।
आपि करता आपि भुगता आपि कारण कीआ।।
विनवंत नानक सेई जाणहि जिनि हरि रस पीआ।।

(राम बिलावल, महला5वां, पृष्ठ 1033)

अंत्येष्टि सम्पन्न होने के पश्चात सभी परिजनों की सभा हुई जिस में गुरू आदेशों के अनुसार केवल हरि कीर्तन ही किया गया। किसी प्रकार का रूदन अथवा शोक व्यक्त करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई इस पर पृथीचंद ने गलत फैमियां उत्पन्न करने के लिए अफवा उड़ा दी कि पिता जी तो बिल्कुल स्वस्थ्य थे, उनका निधन अकस्मात कैसे हो सकता है? अवश्य ही अरजन ने उन्हें विष देकर मार डाला है! किन्तु मामा मोहन जी व मोहरी जी ने दुष्ट प्रचार का कड़ा विरोध किया उन्होंने संगत के सत्य अवगत करवाया और कहा-पूर्ण पुरूष जन्म-मरण से ऊपर होते होते है। वह विधाता द्वारा दी गई श्वासों की पूंजी का सदोपयोग कर गुरू पुरी को सहर्ष प्रस्थान कर गये है। इसमें किसी को तनिक भी शंका नहीं करनी चाहिए। पृथी चन्द की बात कर किसी ने भी कोई प्रति क्रिया नहीं की, वह दिन आ गया। समस्त क्षेत्र का अपार जन समुह संगत रूप में एकत्र हुआ। समस्त गणमान्य लोगों ने अपनी श्रद्धा अनुसार गुरूदेव के उत्तराधिकारी श्री गुरू अरजन देव जी को भेंट स्वरूप वस्त्र इत्यादि दिये। किन्तु पगड़ी की रस्म समय पृथीचन्द ने फिर बखेड़ा उत्पन कर

दिया कि मैं बड़ा लड़का हूं अत: परम्परा अनुसार मेरा अधिकार इन समस्त वस्तुओं पर बनता है। उदार चित गुरू अरजन देव जी ने यह तर्क तुरन्त स्वीकार कर लिया और पगड़ी अपने बड़े भाई पृथीचंद के सिर बंधवा दी। इस पर उसने वह समस्त धन जो उपहार स्वरूप आया था समेटा और अमृतसर लौट गया। कुछ लोगों ने पृथीचन्द के कार्यो को देख कर आपति की परन्तु श्री गुरू अरजन देव जी ने कहा – भ्राता जी को केवल इन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता है सो उसकी तृषणा पूर्ण होनी चाहिए।

भट्ट कवियों का गुरू दरबार में आगमन

श्री गुरू राम दास जी के निधन का समाचार फैलते ही संगत दूर–दराज के क्षेत्रों से उनकी तेहरवी के समारोह में सम्मिलित होने गोईदवाल एकत्र होने लगी, इन संगत के मुखी जनों के साथ कुछ भट्ट विद्वानों की भेंट हो गई। ये समस्त प्रसिद्ध तीर्थ स्थलों का भ्रमण कर रहे थे किन्तु इन की जिज्ञासा कहीं शांत नहीं हुई क्योकि इनको कहीं पूर्ण सत्यगुरू के दर्शन नहीं हुए जो इन्हें शाश्वत ज्ञान दे सके। वैसे तो पुस्तकीय ज्ञान वाले बहुत से विद्वान समय–समय मिलते रहे किनतु ब्रह्मवेता कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुआ। संगत के प्रमुखों से इन भट्ट विद्वनों को ज्ञात हुआ कि पांचवे गुरू श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी नियुक्त हुए है वह प्रत्येक दृष्टि से सम्पूर्ण अथवा बहुमुखी प्रतिमा के स्वामी है जिनमें आध्यात्मिक शिखर पर पहुंची हुई दिव्य ज्योति के आप को दर्शन होगे।

ये भट्ट जो कि अधिकांश कवि भी थे, ह्रदय में तीव्र जिज्ञासा लेकर गोइंदवाल गुरूदेव के दर्शनों को उपस्थित हुए। इनकी गिनती ग्यारह थी। रास्ते में इन्होंने गुरूदेव की स्तुति में सिक्खों के जत्थे से अनेकों बातें सुनी, जिस के आधार पर उनका अनुमान था कि गुरू महाराज की आयु प्रौढ़ावस्था की तो होगी किन्तु उन्होंने जब गुरूदेव को एक नवयुवक के रूप में देखा तो उनके आश्चर्य का ठीकाना न रहा। जब उन्होने गुरूदेव के संग समीप्ता प्राप्त की तो उन्होंने अनुभव किया कि जैसा सत्य गुरू सुना था वैसा ही पाया है।

गुरूदेव के बड़े भाई पृथीचन्द के अड़ियल व्यवहार को उन्होंने देखा उस के विपरीत श्री गुरू अरजन देव जी सदैव शांत, शीतल व गम्भीर बने रहते उनकी मधुरता उनको मंत्रमुग्ध करती चली गई क्योकि यह समय गुरूदेव के धैर्य की परीक्षा का समय था। इस बीच भट्टों ने पहले चारों गुरूजनों के विषय में संगत से प्रयाप्त जानकारी प्राप्त कर ली। इस प्रकार उनके मन पर गुरूजनों के प्रति बहुत प्रभाव पड़ा और उन्होंनें पाचों ही गुरूजनों की स्तुति में काव्य रचनाएं लिखी जो कि बाद में आदि ग्रंथ साहब में संकलित कर ली गई। इन रचिनाअें को भट्ट कवियों के सवैये कहा जाता है।

पृथी चन्द द्वारा गुरू–घर की नाका बंदी

श्री गुरू रामदास जी के परम ज्योति मे विलीन हो जाने के पश्चात दस्तार बंदी की रस्म पूरा कर के, श्री गुरू अरजन देव जी गोईदवाल से वापिस अमृतसर आ गये। उन दिनों अमृतसर नगर का निर्माण कार्य तो चल ही रहा था। यह कार्य पृथीचन्द जी की देखरेख में हो रहा था। किन्तु दस्तारबन्दी के समय पृथी चन्द के व्यवहार ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह अपना सहयोग गुरू–दरबार के कार्यो में नहीं देंगे। अत: नगर निमार्ण के कार्यो में बाधा उत्पन्न होने की सम्भावना थी। जब की श्री गुरू अरजन देव जी चहाते थे कि निर्माण कार्यो में तीव्र गति लाई जाये। किन्तु अभी उनके पास इस कार्य को उसी गति से करवाने का विकल्प नहीं था क्योंकि पृथीचन्द जी ने समस्त आयय के साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण कर रखा था।

पृथी चन्द गुरू अरजन देव जी के बढ़ते हुए प्रताप को देखकर बहुत परेशान था क्योकि वह स्वयं गुरू बनना चाहता था। अत: वह अब गुरू बनने की युक्तियां पर विचार करने लगा। उसने सोचा कि यदि वह गुरू–दरबार को आर्थिक क्षति पहुंचाए तो गुरू अरजन विचलित हो जाएंगे और वह अपने पक्ष के मसदों (मिशनारियों) की सहायता से गुरू गद्दी पर कब्जा करने में सफल हो जाएंगा। उसने इसी आशय से नगर की चुंगी इत्यादि की आमदनी अपने कब्जे में करनी प्रारम्भ कर दी और इस के अतिरिक्त अपने विशेष व्यक्तियों को नगर के बाहर प्रमुख रास्तों पर तैनात कर दिया। वे लोग दूर–दराज से आने वाली संगत से कार भेंट (दशमांश) की राशी लेकर पृथी चंद के कोष में डाल देते और संगत को गुरू अरजन देव जी द्वारा चलाये गये लंगर में भेज देते। इस प्रकार गुरू घर की आय घटते–घटते लगभग समाप्त होने लगी परन्तु खर्च ज्यूं का त्यूं ही जारी रहें। आर्थिक दशा के बिगड़ने के कारण धीरे–धीरे लंगर मस्ताना रहने लगा अर्थात कभी कभी लंगर में भोजन की भारी कमी देखने को मिलती। जहां कभी उत्तम पदार्थ परोसे जाते थे अब उसमें केवल चने की रोटी ही मिलती। किन्तु लंगर प्रथा जारी रखने के लिए गुरू अरजन देव जी ने पहले अपनी पत्नी गंगा देवी जी के गहने दिये फिर घर का सामान इत्यादि बेच दिया इसके अतिरिक्त आप जी ने अपने मामा मोहन जी मोहरी से कुछ धन कर्ज भी मांगवाया। अपार जन समूह के समक्ष भला इस धन से दैनिक व्यय कहां पूरे होने वाले थे। प्रतिदिन लंगर का स्तर निम्न होता गया और संगत में निराशा फैलने लगी। उन्हीं दिनों गुरूदेव जी के मामा जी जिन्हें संगत प्यार से भाई गुरदास जी के नाम से सम्बोधन करती थी अपने घर गोईदवाल से गुरू दरबार में हाज़री भरने आये। जब उन्होंने लंगर में प्रसाद ग्रहण किया तो लंगर का निम्न क्षेणी का स्तर देखकर स्तब्ध रह गये। उत्तर में माता भानी जी ने अपने बड़े लड़के पृथीचन्द की करतूतो के विषय में विशेष जानकारी दी और कहा – वह बहुत कपटी मनुष्य है मेरे बार–बार समझाने पर भी किसी विधी बात मानता ही नहीं। इस पर भाई गुरदास जी ने प्रमुख सिक्खों के साथ इस गम्भीर समस्या पर विचार–विर्मश किया और संगत को जागरूक करने के लिए एक विस्तृत योजना बनाई जिस के अंतर्गत उन्होंने दूर–दराज से आने वाली संगत को पृथीचन्द के छल–कपट से अवगत करवाने लगे। इस प्रकार कुछ दिन यह अभियान तीव्र गति से चलाया गया। जैसे

ही संगत जागरूक हुई वैसे-वैसे लंगर की काया कल्प हो गया। फिर से गुरू घर के लंगर का स्तर बहुत ऊंचा हो गया। किन्तु पृथीचन्द समय-समय नये नये बखेड़े करने लगा। उसने एक नया उपद्र यह किया कि स्वयं गुरू गद्दी लगा कर बैठने लग गया। कुछ नये दर्शनार्थी भूल मे पड़ जाते थे इस प्रकार वहां पृथीचंद बहुत भारी अभियान करता हुआ नई आई संगत को गुमराह करता हुआ भांति-भांति के आर्शीवाद देता। किन्तु उसके पास आध्यात्मिक ज्ञान तो था नहीं जिस कारण उस की जल्दी कलेही खुल जाती। संगत को जब सत्य का ज्ञान होता तो वह पश्चाताप करने के लिए पुन: श्री गुरू अरजन देव जी के दरबार में उपस्थित हो आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सन्तुष्ट होकर लोट जाते इस प्रकार धीरे-धीरे पृथीचंद की यह नीति भी बूरी तरह असपाल सिद्ध हुई। संगत के जागरूक होने पर पृथी चन्द जन साधारण की दृष्टि में ही भावना से देखा जाने लगा। इस प्रकार अपने को असफल पाकर उसके मन में भारी कुण्ठा उत्पन्न हो गई वह श्री गुरू अरजन देव जी को अपने शत्रु की दृष्टि से देखने लगा। इस के विपरीत श्री गुरू अरजन देव जी सदैव धैर्य की साक्षात मूर्ति, शांत व गम्भीर बनकर अड़ोल रहते जैसे कुछ हुआ ही नहीं, वह कभी कोई प्रतिक्रिया नहीं करते प्रत्येक क्षण मधुर मुस्कान से सभी का स्वागत करते। उनके स्वभाव में कभी उतार व चढ़ाव नहीं दिखाई देता। आप का विश्वास रहता कि सभी कुछ हरि इच्छा से ही हो रही है जो कि सभी के हित में है। इस लिए आप कठिन प्रस्थितियों में भी कभी विचलित दिखाई नहीं देते।

पृथी चन्द चारों तरफ से निराश हो गया उसके मसंद भी उस का साथ छोड़कर चले गये। बोखलाहट में पृथीचन्द ने पंचायत बुला ली और पंचायत के समक्ष समस्त पैतृक सम्पति के बट बार की बात कह दी, उस का मानना था कि मेरी आय लगभग समाप्त हो गई है मुझे मेरा अधिकार मिलना चाहिए। पंचायत ने उसके सभी दावे ध्यान से सुने जो कि किसी प्रकार भी उचित नहीं थे किन्तु उदारवादी श्री गुरू अरजन देव जी ने अपने बड़े भाई को सन्तुष्ट करने के लिए वह सभी कुछ जो वह चाहते थे देना स्वीकार कर लिया उन दावों में पृथीचन्द को अमृतसर नगर के बाजारों के किरायों की आमदनी भी थी। समस्त संगत गुरूदेव की विशालता से आश्चर्य चकित थी।

श्री गुरू अरजन देव जी की दिन चर्या

श्री गुरू अरजन देव जी ने श्री अमृतसर में गुरू-दरबार की मर्यादा वही पहले गुरूजनों के अनुसार ही रखी। आय सर्योदय से एक पहल (तीन घंटे) पहले विस्तार त्याग देते तद्पश्चात शौच-स्नान से निवृत होकर सिहांसन लगाकर प्रभु चरणों में सुरति एकागर कर प्रार्थना मे लीन हो जाते। जब सूर्योदय होता तो आप साध संगत के मध्य विराज मान होकर कीर्तनीय जत्थे से आसा की बार का कीर्तन श्रवण करते। आप स्वयं कीर्तन करना जानते थे और राग विद्या का आप को बहुत अच्छा ज्ञान था अत: आप कभी-कभी स्वयं भी सिरंदा नामक साज लेकर प्रभु स्तुति में लीन हो जाते। जब खाबी सत्ता व वलवंडा जी कीर्तन की चौंकी समाप्ति करते तो आप तद्पश्चात सजे हुए दरबार में ज्ञान देते। आप के प्रवचनों का विषय समय-समय अलग-अलग होता किन्तु प्रवचनो का तत्व सार अधिकांश यही रहता कि मनुष्यों को प्रकृति के नियमों को समझना चाहिए ओर उसी का अनुसरण करते हुई बिना किसी हस्तक्षेप के सहज जीवन जीना चाहिए। आप जी कीर्तन को सर्वोतम स्थान देते आप का मानना था कि कीर्तन मन पर नियन्त्रण करके विकारों से बचाता है और सुरति को प्रभु चरणों में जोड़ने को एक अच्छा साधन है जिससे भक्तगण को नाम रूपी अमृत की प्राप्ति होती है इस प्रकार जब भरपूर दिन चढ़ जाता तो आप जी दरबार की समाप्ति कर लंगर में पधारते और संगत के संग नाश्ता करते। यहां से निपट कर चल रहे भवन निर्माण कार्यो की देखरेख में जुट जाते। दुख भंजनी बेरी नामक वृक्ष के नीचे बैठकर सेवकों को निर्देश देते।

दुपैहरे के समय आप जी पुन: संगतों की भोजन व्यवस्था देखने के लिए लंगर में पहुंच जाते। जब सब यात्री अथवा सिख संगत भोजन ग्रहण कर लेती तो आप भी भोजन करते। तद्पश्चात आप जी कुछ समय आराम के लिए अपने निजी घर में चले जाते और संध्या होने से पूर्व पुन: दीवान (दरबार) में पधारते। पहले दूर-दराज से आई हुई संगत से कुशलक्षेम पूछते और उनके रहने इत्यादि का प्रबन्ध करते। फिर आप जी सैर करते हुये और सरोवर की परीक्रमा करते इस प्रकार आप दूर-दूर तक एक दृष्टि पूरे नगर पर डालते और सब की समस्याएं सुनते। कुछ एक का तो आप जी तुरन्त समाधान कर देते। लोअ कर सोदूर (रहिरास) की चौकी में भाग लेते उपरांत कीर्तन की चौकी होती। कीर्तन की समाप्ति पर दूर-दराज से आई संगत से विचार विर्मश होता। गुरूदेव उसके संशयों का समाधान करते और आध्यात्मिक उल्झनों को सुलझाने का प्रयत्न करते। इस प्रकार आप जी रात्री के आराम के लिए अपने निजी गृह चले जाते।

दैवी नम्रता के पुंज

जब श्री गुरू रामदास जी के सच्चखण्ड गमन और श्री गुरू अर्जुनदेव जी के गुरू गद्दी पर विराजमान होने का समाचार दूर प्रदेशों में पहुँचा तो वहाँ की संगत काफिले बना बना कर पाँचवे गुरूदेव जी के दर्शनों को उमड़ पड़ी। गुरूदेव जी प्रदशों से आने वाली संगत के स्वागत के लिए सदैव तत्पर रहते थे। आप को एक दिन सूचना मिली कि काबुल नगर से आने वाली संगत संध्या तक अमृतसर पहुँच जाएगी। गुरूदेव जी संगत की प्रतीक्षा करते रहे किन्तु संगत नहीं पहुँची। अन्त में आपने मन बनाया कि संगत की सुध-बुध लेने हमें ही चलना चाहिए। आपने एक बैलगाड़ी में भोजन इत्यादि वस्तुएं ली और साथ में आपनी पत्नी श्रीमती गँगा जी को चलने को कहा और इस प्रकार रास्ते भर खोज करते-करते आपने उन्हें अमृतसर से पाँच कोस दूर खोज ही लिया। सभी यात्री विश्राम करने के विचार से शिविर बना कर लेटने की तैयारी कर रहे थे। तभी आपने उनके जत्थेदार से भेंट की और कहा – हम आप के लिए भोजन-जल इत्यादि की व्यवस्था कर रहे हैं, कृपया इसे स्वीकार करें। आप ने समस्त संगत को भोजन कराया और उनको राहत पहुँचाने के विचार से पँखा इत्यादि किया। कुछ बुजुर्ग बहुत थके हुए

थे, उनका शरीर अधिक चलने के कारण पीड़ा के कष्ट को सहन नहीं कर पा रहा था। अत: गुरूदेव जी ने उनके शरीर को दबा कर सहलाना प्रारम्भ कर दिया। ठीक इस प्रकार आपकी सुपत्नी गँगा देवी जी ने भी बुजुर्ग महिलाओं को राहत पहुँचाने के विचार से सहलाना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार रात व्यतीत हो गई। अमृतबेला में संगत सुचेत हुई और शौच स्नान से निवृत होकर अमृतसर की ओर प्रस्थान कर गये। अमृतसर पहुँचने पर समस्त दर्शनार्थियों के हृदय में गुरूदेव जी के दर्शनों की अभिलाषा चर्म सीमा पर थी। वे समागम स्थल पर पहुँचने के लिए जल्दी में थे, इसलिए उन्होंने अपने सामान तथा जूतों की देखभाल के लिए उसी रात वाले सेवादार को तैनात कर दिया और स्वयँ गुरूदरबार में उपस्थित हुए। वहाँ कीर्तन तो हो रहा था किन्तु गुरूदेव अभी अपने आसन पर विराजमान नहीं थे, पता करने पर मालूम हुआ कि गुरूदेव जी प्रात:काल ही आसन पर विराजमान हो जाते हैं, किन्तु रात से वह स्वयँ काबुल की संगत की अगवानी करने गये हुए हैं, शायद लौटे नहीं हैं। यह सुनते ही संगत के मुखी सिक्ख सतर्क हुए और उन्होंने पूछा कि कहीं वह युवा जोड़ी तो नहीं जो रात को हमारे लिए खाना लाये थे और रात भर पंखा इत्यादि करके संगत की सेवा करते रहे हैं? उनका विचार ठीक था कि वह गुरू अर्जुन देव जी ही थे। वे सभी कहने लगे कि हम ने तो उनको अपने सामान की देखभाल के लिए नियुक्त किया है। जल्दी ही उनको अपनी भूल का अहसास हुआ। वे लौट आये और देखते क्या हैं कि गुरूदेव जी और उनकी पत्नी सँगत के जूते साफ कर रहे हैं। संगत के मुखिया ने गुरूदेव जी के चरण पकड़ लिए और क्षमा याचना की। उत्तर में गुरुदेव जी ने कहा – इसमें क्षमा माँगने की क्या बात है? हमें तो आप की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए पहुँचना ही था।

भाई भिखारी जी

श्री गुरू अरजन देव जी के दरबार में एक दिन एक गुरमुख सिंघ नाम का श्रद्धालु उपस्थित हुआ और वह विनती करने लगा। हे गुरूदेव! मैं आप जी द्वारा रचित रचना सुखमनी साहब नित्यप्रति पढ़ता हूं मुझे इस रचना के पढ़ने पर बहुत आनंद प्राप्त होता है परन्तु मेरे हृदय में एक अभिलाषा ने जन्म लिया है कि मैं उस विशेष व्यक्ति के दर्शन करू जिस की महिमा आपने ब्रह्मज्ञानी के रूप में की है। गुरूदेव इस सिख पर प्रसन्न हुए और कहने लगे आप की अभिलाषा अवश्य ही पूर्ण की जायेगी। उन्होंने एक पता बताया और कहा – आप जिला जेहलम (पच्छिमी पंजाब) के भाई भिखारी नामक सिख के गृह चले जाये। वहां आप के मन की मंशा पूर्ण होगी।

गुरमुख सिंघ जी खोज करते-करते भाई भिखारी जी के गृह पहुंचे। उस समय उनके यहां उनके लड़के के शुभ विवाह की बड़ी धूम-धाम से तैयारियां हो रही थी। आप जी भाई भिखारी जी के कक्ष में उनको मिलने पहुंचे। किन्तु भाई जी एक विशेष कपड़े की सिलाई में व्यस्त थे। भाई भिखारी जी ने आगन्तुक का हार्दिक स्वागत किया और अपने पास बड़े प्रेम से बैठा लिया। सिघं जी को आश्चर्य हुआ और वह पूछ बैठे आप यह क्या सिल रहे है? जो इस शुभ समय में अति अवश्यक है? उत्तर मे भिखारी जी ने कहा – आप सब जान जायेगे, जल्दी की इस कपड़े की भी आवश्यकता पड़ने वाली है। इस वार्तालाप के पश्चात भाई भिखारी जी के सुपुत्र की बारात समधि के यहां गई और बहुत धूमधाम से विवाह सम्पन कर, बहू को लेकर लोट आई। जैसे ही लोग बधाईयां देने के लिए इकट्ठे हुए तो उसी समय गांव पर डाकूओं ने आक्रमण कर दिया। गांव के लोग इक्कठे होकर डाकूओं से लोहा लेने लगं, इन योद्धाओं में दूल्हा भी डाकूओं का सामना करने पहुंच गया। अकस्मात मुकाबला करते समय डाकुओं की गोली दूल्हे को लगी, वह वहीं वीरगति पा गया। इस दुखत: घटना से सारे घर पर शोक छा गया, किन्तु भाई भिखारी जी के चेहरे पर कोई निराशा का चिन्ह तक न था। उन्होंने बड़े सहज भाव से वही अपने हाथों से सिला हुआ कपड़ा निकाला और उसको बेटे के कफन रूप में प्रयोग किया और बहुत धैर्य से अपने हाथों बेटे का अंतिम संस्कार कर दिया। तब इस आगन्तुक श्रद्धालु सिख से न रहा गया। इसने अपनी शंका व्यक्त की कि जब आप जानते थे कि मेरे बेटे ने मर ही जाना है तो आपने उसका विवाह ही क्यों रचा? इस के उत्तर में भाई भिखारी जी ने कहा :- कि यह विवाह मेरे इस बेटे के संयोग में था। इस लिए इस कन्या के वरण हेतु ही उसने मेरे गृह जन्म लिया था क्योंकि इस के भूतपूर्व जन्म में इसकी अभिलाषा इस कन्या को प्राप्त करने की थी परन्तु उस समय यह संन्यासी, "योग आश्रम" में था, इस लिए ऐसा सम्भव न था। तो भी इस की भक्ति सम्पुर्ण हो गई परन्तु इसे मोक्ष प्राप्ति नहीं हुई। क्योंकि इस के मन में एक तृष्णा रह गई थी कि मैं इस लड़की को प्राप्त करूं। इस संक्षिप्त उत्तर से आगन्तुक श्रद्धालु का संशय निवृत नहीं हुआ। उसने पुन: भाई जी से विनती कि कृप्या मुझे यह वृत्तांत विस्तार पूर्वक सुनाये।

इस पर भाई भिखारी जी ने यह वृतांत इस प्रकार सुनाया – मेरे इस बेटे ने अपने भूतपूर्व जन्म में भी एक कुलीन परिवार में जन्म लिया था। इसे किसी कारण युवावस्था में ही संसार से विराग हो गया। अत: इस ने संन्यास ले लिया और यह एक कुटिया बनाकर वनों में अपनी अराधना करने लगा परन्तु जीवन जीने के लिए यह कभी-कभी गाँव-देहातों में आता और भिक्षा मांग कर पेट की आग बुझा लेता। कुछ दिन ऐसे ही व्यतीत हो गये परन्तु एक दिन इस युवक को कहीं से भी भिक्षा नहीं मिली क्योंकि एक स्वस्थ युवक को कोई सहज में भिक्षा न देता। अन्त में एक घर पर यह पहुंचा, वहां एक नवयुवती ने बड़े सत्कार से इसे भोजन कराया। वास्तव में यह युवती इस युवक के तेजस्वी मुख मण्डल से बहुत प्रभावित हुई थी, क्योंकि इस छोटी सी आयु में इस युवक ने बहुत अधिक प्राप्ति कर ली थी। अत: इस का चेहरा किसी अज्ञात तेज से धहकने लगा था। इसी प्रकार दिन व्यतीत होने लगे। जब कभी इस युवक को कहीं से भी भिक्षा प्राप्त न होती तो इसी नवयुवती के यहां चला आता और यह युवती बड़े स्नेह पूर्वक इस संन्यासी युवक को भोजन कराती तथा टहल-सेवा करती। भोजन उपरान्त यह तपस्वी वापस अपनी कुटिया में लोट जाता। यह क्रम बहुत दिन चलता रहा। इसी बीच इन दोनों को परस्पर कुछ लगाव हो गया। यह तपस्वी चाहने पर भी अपने को इस बन्धन से मुक्त नहीं कर पाया। बस इसी लगाव ने एक अभिलाषा को जन्म दिया कि "काश हम गुहस्थी होते " तभी इस युवक

तपस्वी की भक्ति सम्पूर्ण हो गई तथा इस ने अपना शरीर त्याग दिया परन्तु मन में बसी अभिलाषा ने इस को पुनर जन्म लेने पर विवश किया और अब इसने मेरे बेटे के रूप में उस संन्यासी ने उसी युवती का वरण किया है जो इसको भोजन कराती थी। वास्तव में तो इसी की भक्ति सम्पुर्ण थी केवल पुनः जन्म एक छोटी सी तृष्णा के कारण हुआ था, जो वह आज पूरी हुई थी। इस प्रकार वह तपस्वी युवक अब मेरे बेटे के रूप में बैकुण्ठ को जा रहा है। इस लिए मुझे किसी प्रकार का भी शोक हो ही नहीं सकता। अतः मैं हर प्रकार से सन्तुष्ट हूँ। यह वृतांत सुनकर उस श्रद्धालु गुरूमुख सिंघ की शंका निवृत हो गई और वह जान गया कि ब्रह्मज्ञानी हर समय प्रभु रंग में रंगे रहते है। उनको कोई सुख-दुःख नहीं होता। उनके लिए माट्टी, सोना एक सामान हैं और इनका शत्रु अथवा मित्र कोई नहीं होता। अतः यह लोग गृहस्थ में रहते हुए भी मन के पक्के वैरागी होते है और प्रभु लीला में ही इनकी भी खुशी होती है। यह प्रभु के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करते।

दोआबा का चौधरी

श्री गुरू अर्जुन देव जी के दरबार में एक दिन भाई पुरिया व भाई चूहड़ के नेतृत्त्व में दोआबा क्षेत्र का चौधरी मंगलसेन आया। उसने गुरूदेव जी के सम्मुख विनती की कि कोई ऐसी युक्ति बताएं, जिससे हम लोगों का भी कल्याण हो जाये। इस पर गुरूदेव जी ने कहा - जीवन में सत्य पर पहरा देना सीखो, कल्याण अवश्य ही होगा। यह सुनते ही चौधरी मंगलसेन बोला - यह कार्य असम्भव तो नहीं, बल्कि कठिन जरूर है। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा - मानव जीवन में कल्याण चाहते हो और उसके लिए कोई मूल्य भी चुकाना नहीं चाहते। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती। कुछ प्राप्ति करने के लिए कुछ मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है। मंगलसेन गम्भीर हो गया और बोला - यकायक जीवन में क्रान्ति लाना इतना सहज नहीं क्योंकि हमारा अब तक स्वभाव परिपक्व हो चुका है कि हम झूठ के बिना रह नहीं सकते। गुरूदेव जी ने सुझाव दिया कि धीरे धीरे प्रयास करो, जहाँ चाह वहाँ राह, यदि आप दृढ़ता से कोई कार्य करें तो क्या नहीं हो सकता, केवल संकल्प करने की आवश्यकता है। मंगलसेन सहमति प्रकट करते हुए कहने लगा - इस कठिन कार्य के लिए कोई प्रेरणा स्त्रोत भी होना चाहिए। जब हम डगमगाए तो हमें सहारा दे। गुरूदेव जी ने युक्ति बताई कि वह एक कोरी कापी सदैव अपने पास रखे, जब कभी किसी मजबूरीवश झूठ बोलना पड़े तो उस वृतान्त का विवरण नोट कर लें और तद्पश्चात सप्ताह बाद साध-संगत में सुना दिया करें, संगत कार्य की विवश को मध्यनज़र रख कर उसे क्षमा करती रहेगी। मंगलसेन ने सहमति देकर वचन दिया कि वह ऐसा ही आचरण करेगा।

बात जितनी सुनने में सहज लगती थी, उतनी सहजता से जीवन में अपनानी कठिन थी। अपने झूठ का विवरण संगत के समक्ष रखते समय मंगलसेन को बहुत ग्लानि उठानी पड़ने की सम्भावना दिखाई देने लगी। वह गुरू आज्ञा अनुसार अपने पास सदैव एक कोरी कापी रखने लगे, किन्तु जब भी कोई कार-व्यवहार होता तो बहुत सावधानी से कार्य करते कि कहीं झूठ बोलने की नौबत न आ जाये। इस सतर्कता के कारण वह प्रत्येक क्षण गुरूदेव जी को सर्वज्ञ जानकर बात करते और वह हर बार सफल होकर लौटते। धीरे धीरे उनके मन में गुरू जी के प्रति अगाध श्रद्धा-भक्ति बढ़ने लगी और वह लोगों में सत्य के कारण लोकप्रिय भी बन गये। सभी ओर से मान-सम्मान मिलने लगा। जब प्रसिद्धि अधिक बढ़ गई तो उन्हें गुरूदेव जी की याद आई कि यह सब कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन तो गुरूदेव जी के वचनों को आचरण में ढ़ालने का ही परिणाम है। वह अपने सहयोगियों की मण्डली के साथ पुनः गुरूदेव जी की शरण में उपस्थित हुआ। गुरूदेव जी ने झूठ लिखने वाली कापी माँगी। चौधरी जी ने वह कोरी कापी गुरूदेव जी के समक्ष रख दी। गुरूदेव जी ने कहा - जो श्रद्धा विश्वास के साथ वचनों पर आचरण करेगा, उसके संग प्रभु स्वयँ खड़े होते हैं, उसे किसी भी कार्य में कोई कठिनाई आड़े नहीं आती।

मूर्ति उपासक ब्राह्मण

श्री गुरू अर्जुन देव जी एक दिन रामदास सरोवर की परिक्रमा कर रहे थे तो उनकी दृष्टि एक ब्राह्मण पर पड़ी जो अपने समक्ष एक मूर्ति स्थापित कर उस की पूजा अर्चना में व्यस्त था। उसने सभी प्रकार की सामग्री का प्रदर्शन इस प्रकार किया हुआ था कि बरबस वहाँ से गुजरने वाले उस की ओर आकर्षित हो रहे थे। गुरूदेव जी ने देखा कि ब्राह्मण उस समय हाथ जोड़ कर व आँखे बन्द करके मूर्ति के सम्मुख कुछ बुद-बुदा रहा था। एक नज़र देख कर गुरूदेव जी आगे बढ़ गये। जैसे ही गुरूदेव जी कुछ कदम आगे पहुँचे, ब्राह्मण ने आँखे खोली और ऊँचे स्वर में कुछ गिले-शिकवे भरे अन्दाज में कहना शुरू किया - स्वयँ को गुरू कहलवाते हैं किन्तु भगवान की प्रतिमा को अभिनंदन भी नहीं करते। यह शब्द सुनकर गुरूदेव जी रूक गये और उन्होंने ब्राह्मण को सम्बोधन करके कहा - आप का मन कहीं और है, किन्तु केवल आँखे बन्द करके भक्ति करने का नाटक कर रहे हो जो कि बिल्कुल निष्फल है। भक्ति तो मन की होती है न की शरीर की। यदि वास्तव में हृदय से प्रभु भक्ति में लीन हो तो हमारे आने का तुम्हें बोध होना ही नहीं चाहिए था? इस व्यंग पर ब्राह्मण बहुत छटपटाया किन्तु गुरूदेव के कथन में सत्य था। इस पर उसने कहा - माना मैं तो भक्ति करने का अभिनय कर रहा था किन्तु आपने तो भगवान की मूर्ति को ना ही नमस्कार किया और ना ही सम्मान? यह सुनते ही उन सभी सिक्खों की बरबस हँसी छूट गई, जो अब ब्राह्मण के उलझने के कारण गुरूदेव जी के संग वहीं खड़े हो गये थे। उत्तर में गुरूदेव ने बड़े शान्त भाव से कहा - हे ब्राह्मण ! हम तो उस दिव्य ज्योति को कण कण में समाया हुआ अनुभव कर रहे हैं, हमारा हर क्षण उस परम पिता परमेश्वर (सच्चिानंद) को प्रणाम में व्यतीत होता है, बस अन्तर इतना है कि हम धर्मी होने का प्रदर्शन

नहीं करते। हमारी मानों, आप भी इस झूठे प्रदर्शन को त्याग कर अपने हृदय रूपी मन्दिर में उस सच्चिदानंद को खोजो, जिस से तुम्हारा कल्याण हो सके। ब्राह्मण को जब उसकी आशा के विरूद्ध खरी-खरी सुनने को मिली तो वह बहुत छटपटाया और कहने लगा - हमारे पूर्वज वर्षो से इस विधि से आराधना करते आ रहे हैं और शास्त्रों में भी इसका उल्लेख है।

गुरूदेव जी ने उसे पुन: समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा - आपने शास्त्रों में ईश्वर का सर्वत्र विद्यमान होना भी पढ़ा होगा? यदि वह सर्वत्र विद्यमान है तो आप को इस प्रतिमा की क्या आवश्यकता पड़ गई थी। वास्तव में आप अपनी जीविका अर्जित करने के लिए ढोंग रचते रहते हैं, न कि प्रभु की उपासना। आप को अपने भीतर प्रभु दृष्टिगोचर नहीं हुआ। ऐसे में वह पत्थर के ठीकरों में से कहाँ मिलेगा जो कि आप ने स्वयँ तैयार किये हैं।

घर महि ठाकुरू नदरि न आवै। गल महि पाहण लै लटकावै।
भरमे भूला साकतु फिरता। नीरू बिरोलै खपि खपि मरता।
जिस पाहण कउ ठाकुरु कहता। ओहु पाहणु लै उस कउ डुबता।
गुनहगार लूण हरामी। पाहण नाव न पार गिरामी।
गुरू मिलि नानक ठाकुरु जाता। जलि थलि महीअलि पूरन विधाता।

सुही, महला 5वाँ, पृष्ठ738

गुरूदेव जी ने उस ब्राह्मण को वहीं अपने प्रवचनों में कहा - जो व्यक्ति सत्य की खोज न करके केवल कर्मकाण्डों तक सीमित रहता है, उसका कार्य उसी प्रकार है जैसे कोई मक्खन प्राप्त करने की आशा से पानी को मथना शुरू कर दे।

हरिमन्दिर साहब का निर्माण

श्री गुरू अर्जुन देव जी ने गुरू गद्दी प्राप्ति के पश्चात् उनके अपने भाई पृथ्वीचन्द द्वारा छल कपट के बल पर कृत्रिम आर्थिक नाकेबंधी से उत्पन्न कठिनाइयों को झेलने पर भी विकास के कार्यो को ज्यों का त्यों जारी रखा। जैसे ही उनकी आर्थिक परिस्थिति सुधर गई तो उन्होंने नव निर्माण के कार्य पुन: प्रारम्भ करवा दिये। इस बीच नगर का विकास जो पिछड़ गया था, उसे तीव्र गति प्रदान की और पिता गुरूदेव जी द्वारा तैयार किये जो रहे 'राम दास सरोवर' को पक्का करना आरम्भ करवा दिया। जब सरोवर का काम चल रहा था तो कुछ मंदबुद्धि वाले मसंदो (मिशनरियों) न चिनाई में चूना इत्यादि के स्थान पर गारे आदि का प्रयोग करना शुरू कर दिया। इस बात की सूचना पाते ही गुरुदेव जी उन लोगों पर बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने कहा - ये लोग गुरूघर की महिमा नहीं जानते। गुरू श्री नानक देव जी के गृह में किसी वस्तु की कमी नहीं आती, केवल मन में विश्वास और प्रभु पर दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए। सरोवर के काम को समाप्त करने के पश्चात् कुछ वर्षो बाद आप ने निर्धारित योजना के अन्तर्गत एक भव्य भवन का मानचित्र स्वयँ आपने हाथों से तैयार किया और इस भवन को रामदास सरोवर के मध्य में निर्माण करने की घोषणा की। इस कार्य का शिलान्यास करने के लिए आप जी ने अपने पुराने मित्र लाहौर निवासी चिश्ती सम्प्रदाय के आगू साई मियाँ मीर जी को आमन्त्रित किया। सन् 1588 की 3 जनवरी को सूफी पीर मियाँ मीर जी ने सरोवर के मध्य भव्य भवन की आधारशिला रखी, किन्तु उनसे पहली ईट कुछ तिरछी रखी गई। उसी समय राजमिस्त्री ने उसये उखाड़ सीधा कर दिया। यह देख कर गुरूदेव जी बहुत क्षुब्ध हुए और उन्होंने कहा - हम ने भवन की नींव अटल रखने के लिए विशेष रूप से महापुरूषों को आमन्त्रित किया था और तुमने उनकी रखी हुई ईट को उखाड़ कर पलट दिया है। यह काम अच्छा नहीं हुआ। अब इस भवन के ध्वस्त होने का भय बना रहेगा और इसका कभी न कभी पुन: निर्माण अवश्य ही होगा। कालान्तर में यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। अहमदशाह अब्दाली ने तोपों से हरि मन्दिर को ध्वस्त कर दिया।

जब भव्य भवन निर्माण का शुभारम्भ गुरूदेव जी ने सांई मियाँ मीर जी द्वारा करवा दिया तो संगत कार सेवा (श्रमदान) के लिए सक्रिय हुई। दूर-दराज से श्रद्धालु अपना अपना योगदान देने के लिए उमड़ पड़े। तभी गुरूदेव जी ने इस नव-निर्माण हेतु भवन का नाम हरि मन्दिर रखा और इसका कार्य संचालन बाबा बुड्ढा जी की देखरेख में होने लगा। गुरूदेव जी ने हरिमन्दिर साहब के लिए चार प्रवेश द्वारों का निर्देश दिया। जिसका सीधा संकेत यही था कि यह पवित्र स्थान चारों वर्णो के व्यक्ति के लिए सदैव खुला है और समस्त मानवमात्र प्रत्येक दिशा से बिना किसी भेदभाव से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रवेश कर सकता है। कुछ प्रमुख श्रद्धालु सिक्खों ने नक्शे और भवन की स्थिति पर संशय व्यक्त करते हुए आप जी से प्रश्न किया कि सभी प्रकार के विशेष भव्य भवन बहुत ऊँचे स्थान पर निर्मित किये जाते हैं और वह नगर के सब से ऊँचे भवनों में से होते हैं किन्तु आप ने हरि मन्दिर को बहुत नीचे स्थान पर बनाया है और भवन की ऊँचाई भी न के बराबर है। इसका क्या कारण है? उत्तर में गुरूदेव जी ने कारण स्पष्ट करते हुए कहा कि - मन्दिरों की संख्या अनन्त है किन्तु हरि मन्दिर कोई नहीं, हरि के दर्शन तो तभी मिलते हैं जब मन नम्रता से झुक जाए, निर्मल हो जाए। अत: भवन के निर्माण में विशेष ध्यान रखा गया है कि सभी जिज्ञासु श्रद्धा भावना में नम्र होकर झुक कर नीचे उतरे, जिससे अभिमान जाता रहे क्योंकि अभिमान प्रभु मिलन में बाधक है। अत: भवन की ऊँचाई भी कम रखी गई है ताकि नम्रता की प्रतीक बन सके। इसके अतिरिक्त भवन को सरोवर के जल की सतह पर रखा गया है, बिल्कुल वैसे ही जैसे कमल का फूल, जल के सदैव ऊपर रहता है, कभी डूबता नहीं। इसका सीधा सा अर्थ है कि श्रद्धालुओं को गृहस्थ में रहते हुए माया से निर्लेप रहना चाहिए - जैसे कमल पानी में रहते हुए उससे निर्लेप रहता है।

जब हरि मन्दिर की परिक्रमा से जोड़ने के लिए दर्शनी ड्यिोडी तथा पुल का निर्माण किया गया तो गुरूदेव जी ने रहस्य को स्पष्ट किया कि यह पुल एकता का प्रतीक है। सभी सम्प्रदायों के लोग धर्म-निरपेक्षता के बल पर भव सागर को पार कर हरि में विलय हो जायेंगे।

व्यापारी गँगा राम जी

श्री गुरू अर्जुन देव जी, राम दास सरोवर के केन्द्र में हरि मन्दिर साहब की इमारत का निर्माण करवा रहे थे, उन्हीं दिनों देश में वर्षा न होने के कारण कई क्षेत्र सूखाग्रस्त थे। जिससे जनसाधारण के लिए अनाज का अभाव उनकी कठिनाइयों का कारण बना हुआ था। ऐसे में जिला बठिंडा नगर से एक व्यापारी अपना बाजरे का सुरक्षित भण्डार ऊँटों पर लाद कर अमृतसर की ओर चला आया। इस विचार से कि वहाँ नव निर्माण का कार्य चल रहा है अतः यहाँ अनाज के मुझे अच्छे दाम मिल सकते हैं क्योंकि सूखे के कारण गेहूँ इत्यादि अनाज का अभवा होगा। व्यापारी का अनुमान ठीक था। गुरू घर में प्रतिदिन लंगर में असंख्य लोग भोजन ग्रहण करते थे। कार सेवा (श्रमदान) का कार्य जोरों पर था, किन्तु अनाज आवश्यकता अनुसार प्राप्त नहीं हो रहा था। ऐसे में गँगा राम व्यापारी द्वारा गुरूदेव को संदेश प्राप्त हुआ कि आप उससे बाजरा खरीद सकते हैं। गुरूदेव ने आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उसके साथ एक अनुबन्ध किया। अनाज का मूल्य कुछ दिनों पश्चात् वैशाखी पर्व पर अदा किया जायेगा। दोनों पक्षों में सहमति होगई और धीरे धीरे प्रतिदिन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए समस्त अनाज गँगाराम से खरीद लिया गया। गँगा राम का लक्ष्य पूरा हुआ। उसने अपने कर्मचारी और ऊँट वापिस भेज दिये और स्वयँ दाम वसूली के विचार से वहीं रूक गया।

गँगा राम व्यापारी ने संगत के उत्साह को देखा। उसके हृदय में भी इच्छा हुई कि वह भी संगत में सम्मिलित होकर कार सेवा अथवा श्रम दान में भाग ले। उसने ऐसा ही किया। वह अवकाश के समय गुरू दरबार में उपस्थित होकर, कीर्तन कथा और गुरूदेव के प्रवचन सुनता। धीरे धीरे गुरूदेव के प्रवचनों का उसके मन पर ऐसा प्रभाव हुआ कि वह गुरूदेव का शिष्य बन गया। उसके हृदय परिवर्तन ने उसे निष्काम सेवक के रूप में विकसित कर दिया। वैशाखी पर्व पर नई फसल के आने पर अनाज का अभाव समाप्त हो गया और दूर-दराज से संगत के आगमन से धन की कमी भी समाप्त हो गई। गुरूदेव ने एक दिन गँगाराम व्यापारी को कहा कि वह अपने बाजरे के दाम कोष से प्राप्त कर ले किन्तु गँगा राम ने ऐसा नहीं किया, वह वहीं पर सेवारत रहने लगा। कुछ दिन पश्चात् गुरूदेव ने उसे फिर बुलाया और कहा - आप व्यापारी हैं। अतः कोषाध्यक्ष से अपना हिसाब ले लें। इस पर गँगाराम जी कहने लगे कि मैं पहले कभी व्यापारी था किन्तु अब नहीं रहा। वास्तव में मैंने पहले कच्चा धन संचित किया है जोकभी स्थिर नहीं रहता, किन्तु मैं अब पक्का धन संचित करना चाहता हूँ जो लोक-परलोक में मेरा आश्रय बने। गुरूदेव ने उसे फिर कहा - व्यापार अपने स्थान पर है क्योंकि वह आपकी जीविका है और गुरू भक्ति अपने स्थान पर है क्योंकि यह आध्यात्मिक दुनियां है। अतः आप अपने अनाज के दाम ले लें। किन्तु गँगा राम जी ने उत्तर दिया कि मेरे पास धन का अभाव नहीं है। मेरी अनाज के रूप में भी सेवा स्वीकार की जाये। जिससे मुझे परम आनन्द मिलेगा। गुरूदेव ने उसके हृदय परिवर्तन को अनुभव किया और उसकी निष्काम सेवा के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी और उसे आशीष दी और कहा - प्रभु ! आपकी मंशा पूरी करेगा।

भाई तीर्था जी (मंझ)

भाई तीर्था जी जिनका उपनाम मंझ था, गाँव कंग भाई, जिला होशियारपुर, पँजाब के रहने वाले एक धनाढ़ किसान थे। आप अपने गाँव के सरपंच अथवा चौधरी थे। अंध विश्वासों के कारण आपके गाँव के अनपढ़ लोग सखी सरवर के उपासक थे। सखी सरवर से तात्पर्य पीरखाना (कब्र) के पुजारी लोग। ये लोग एकीश्वर (दिव्य ज्योति) की उपासना न कर, प्रति वृहस्पतिवार को नियमानुसार मोटी रोटी (रोट) का चढ़ावा चढ़ाते और ढोलक लेकर पीर की स्तुति में मनघण्डत गाने गाते थे। इन गानों का आध्यात्मिक दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं होता था, इसलिए जनसाधारण के जीवन में किसी क्रान्तिकारी परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं उठता था। भाई मंझ (तीर्था जी) स्थानीय चौधरी होने के नाते जनसाधारण का नेतृत्त्व करने के लिए उनके साथ निगाहे गांव, डेरा गाजीखान पश्चिमी पँजाब जयारत (तीर्थ यात्रा) करने जाते। निगाहे गाँव में मुख्य पीर सुलतानियां जी की कब्र अथवा पीर खाना है। परन्तु भाई मंझ जी को जत्थे का नेतृत्त्व करना एक मजबुरी प्रतीत होती क्योंकि उन्होंने पीर की उपासना में मन की शान्ति अथवा आत्मिक आनन्द का कभी अनुभव नहीं किया। भाई मंझ जी विवेकशील व्यक्ति थे। उनके हृदय में आध्यात्मिक उन्नति की चाहत थी। उनका लक्ष्य परमेश्वर में अभेद होने का था। ऊँचे लक्ष्य होने के कारण भाई मंझ जी मन से किसी सत्गुरू की खोज में थे, जिससे उन्हें शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति हो और उनका मुनष्य जीवन सफल हो जाये। जहाँ चाह वहाँ राह की कहावत अनुसार उनको ज्ञात हुआ कि हमारी जयारत के मार्ग में अमृतसर नामक जो नया नगर विकसित हो रहा है, वहाँ एक पूर्ण पुरूष हैं जो ब्रह्मवेता हैं और जिज्ञासुओं को शाश्वत ज्ञान प्रदान करते हैं। बस फिर क्या था ? वह अपने मन में गुरूदेव के दर्शनों की अभिलाषा लेकर अपने गांव के सखी सरवरी लोगों के जत्थे को लेकर पीर की दरगाह की जयारत को निकल पड़े। निगाहे गाँव, सुलतान सैयद अहमद की कब्र (पीरखाना) अथवा पीर जी की दरगाह की जयारत समाप्त कर लौटते समय भाई मंझ जी अपने निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अमृतसर ठहर गये और जत्थे को उन्होंने होशियारपुर भेज दिया।

भाई तीर्था 'मंझ जी' ने श्री दरबार साहब अमृतसर में अपने श्रद्धा सुमन भेंट करते हुए गुरूदेव के दर्शन किये और उनके समक्ष मंशा प्रकट करते हुए कहा कि मुझे यह जीवन सफल करना है, आप कृपया मेरा मार्गदर्शन करें। इस पर गुरूदेव ने प्रश्न किया, हे भक्तजन ! आज तक आप आध्यात्मिक उन्नति के लिए क्या करते रहे हैं ? उत्तर में भाई मंझ जी ने कहा – मैं सखी सरवर का शिष्य हूँ, वहीं की जयारत करके लौट रहा हूँ। गुरूदेव जी ने कहा – शायद आप को मालूम होगा हम केवल एकीश्वर की उपासना में विश्वास रखते हैं और सभी प्रकार की साकार, उपासनाओं को केवल कर्मकाण्ड मान कर अपने अनुयाईयों को इन क्रियाओं से दूर रहने के लिए कहते है। जिससे उनका अमूल्य समय नष्ट न हो क्योंकि ये समस्त क्रियाएँ निष्फल चली जाती हैं। अब विचार लो, हमारे – तुम्हारे सिद्धान्त परस्पर विपरीत हैं। अत: कहीं संयोग हो ही नहीं सकता। यदि तुम हमारे से आध्यात्मिक मार्गदर्शन चाहते हो तो उसका मूल्य बहुत अधिक है, जिस को चुकाना असम्भव तो नहीं, कठिन अवश्य है। उत्तर में मंझ जी कहने लगे कि मैं हर असम्भव कार्य करने को तैयार हूँ, कृपया आप बतायें, मुझे क्या करना होगा ? इस पर गुरूदेव ने स्पष्ट किया। तुम्हें किसी एक का शिष्य बनना होगा क्योंकि एक समय में दो विपरीत सिद्धान्त अपनाये नहीं जा सकते तात्पर्य यह कि जैसे एक रंगीन कपड़े पर यदि दूसरा रँग चढ़ाना हो तो पहले वाले रँग को उतारना होता है तभी दूसरा रँग निखरता है। ठीक इसी प्रकार तुम्हें 'सखी सरवर' की सिखी सेवकी का बिल्कुल त्याग करना होगा। तब कहीं जाकर हम तुम्हें अपना सिख स्वीकार करेंगे। तात्पर्य यह है कि एक समया में आप दो गुरूजनों के शिष्य नहीं रह सकते। **एक सिखी पर दूसरी सिखी नहीं टिक सकती।** अत: यदि हमारे लिए स्वयँ को समर्पित करते हो तो तुम्हें पहले अपने घर जाकर अपने घर से पीरखाना हटाना होगा और घोषणा करनी होगी कि मैं अब 'सखी सरवर' का सिख नहीं, मैंने गुरू नानक देव जी सिखी धारण कर ली है। इसके पश्चात् ही हम तुम्हें दीक्षा देंगे। भाई मंझ जी ने गुरूदेव को उत्तर में रहस्य बताया और कहा – हे गुरूदेव ! मेरा एक मित्र आप का सिख है। वह प्राय: आप जी की वाणी मुझे सुनाता रहता है और मैं उससे बहुत बार आध्यात्मिक उल्जनों का समाधान पा चुका हूँ। मैं जानता हूँ कि हम जो कव्वालियाँ बना बना कर पीर की स्तुति में गाते हैं, वह आध्यात्मिक दुनिया से गौण है। इसलिए मैंने आपके दर्शन करने से पहले आप के यहाँ कुछ दिन कीर्तन, कथा श्रवण करने में व्यतीत किये हैं। जिससे मेरे मन के सभी संशय निवृत्त हो गये हैं। इसलिए आप निश्चिंत रहे। मैं अपने निश्चय में अटल हूँ। आप की आज्ञा अनुसार ही आचरण करूँगा।

इस प्रकार भाई तीर्था (मंझ जी) अपने गाँव लौट आये। उन्होंने आते ही अपने परिवार को विश्वास में लिया और सब से पहले अपने घर से पीरखाना सदा के लिए हटा दिया। जब पड़ोसी सखी सरवरियों को पीर की कब्र सुबह दिखवाई नहीं दी तो गाँव में बहुत बवेला हुआ। जिस कारण लोगों ने उन्हें पंचायत के चौधरी पद से हटा दिया। ऊपर से विडम्बना यह कि आपको प्रकृति प्रकोपों ने आ घेरा। देखते ही देखते कुछ ही दिनों में आपके मवेशी धीरे धीरे मर गये और आपकी फसल भी किसी भयकर बीमारी की चपेट में आकर नष्ट हो गई। गांव के लोग जो कभी मित्र हुआ करते थे, अब शत्रु बन कर व्यंग्य करने लगे। किन्तु भाई मंझ जी ने धैर्य नहीं छोड़ा। उनका मानना था कि शायद गुरूदेव उनकी परीक्षा ले रहे हैं कि मेरा शिष्य कितना दृढ़ निश्चयी है। उसकी श्रद्धा डगमगाती है कि नहीं। आर्थिक विपत्तियों ने आपको घेर लिया। इस कारण आप को अपनी भूमि गिरवी रखनी पड़ गई। किन्तु आप विचलित नहीं हुए, बल्कि गुरू की ओट लेकर, सब कुछ सहर्ष सहन करते गये। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया। गाँव के लोग फिर पीर की जयारत पर जाने को तैयार हुए। उनमें से कुछ एक ने भाई मंझ जी को प्रेरणा की कि हम आपके हितैषी हैं, इसलिए आप को निगाहे गाँव जाकर क्षमा याचना करने का सुझाव दे रहे हैं, जिससे आप की समृद्धि फिर से लौट आये। परन्तु भाई मंझ जी किसी विशेष मिट्टी के बने हुए थे। वह अपनी दृढ़ता में ही रहे। उनका मानना था कि गुरू नानक की सिक्खी प्राप्त करने के लिए कुछ मूल्य तो चुकाना ही पड़ेगा और उन्होंने गुरू अर्जुन देव जी के दर्शनों के लिए अमृतसर जाने का मन बना लिया।

एक वर्ष बाद भाई मंझ जी गुरू अर्जुन देव के सम्मुख अमृतसर में हाजिर हुए। उन्होंने गुरूदेव को बताया कि मैं आपकी आज्ञा अनुसार ही आचरण कर रहा हूँ। शायद इसलिए मेरे गाँव वालों ने मुझे बिरादरी से निष्कासित कर दिया है। उत्तर में गुरूदेव जी ने हां – अंधविश्वासी लोग ज्ञानवान का क्या बहिष्कार करेंगे। वास्तव में एक समय आयेगा जब वे स्वयँ ही प्रायश्चित करेंगे। आप बस समय की प्रतीक्षा करें और पक्की धुन से संगत की सेवा में जुट जायें।

भाई मंझ जी गुरू उपदेश लेकर वहीं लंगर सेवा करने में जुट गये। आप जी ने गुरू चरणों में रहकर गुरूवाणी कंठस्थ कर ली और नाम सिमरण करने लगे। आप प्रात:काल बिस्तर त्याग देते और लंगर के लिए ईंधन लेने जँगल में चले जाते, ईंधन की लकड़ियों का एक बोझा वह प्रतिदिन लंगर में डालते और बाकी के समस्त दिन में संगत की टहल सेवा में व्यतीत करते। इस प्रकार लगभग एक वर्ष व्यतीत हो गया। एक दिन गुरूदेव लंगर में पधारे, अकस्मात् उनकी दृष्टि भाई मंझ जी पर पड़ी तो उन्होंने भाई मंझ से पूछा – हे भक्तजन ! भोजन कहाँ से करते हो ? भाई मँझ ने उत्तर दिया लंगर से। तब गुरूदेव ने उन्हें समझाते हुए कहा – आपने सेवा के बदले भोजन कर लिया, बताओ सेवा का फल कहाँ से प्राप्त होगा ? भाई जी ने गुरूदेव के संकेत को समझा और निष्काम सेवा के लिए कमर कस ली। अब आप ईंधन के दो बोझे जँगल से लाने लगे। एक गुरू के लंगर में डाल देते और दूसरा नगर में बेच देते। उससे प्राप्त धन से अपने भोजन की व्यवस्था करते। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दिन भाई मंझ जी प्रात:काल जँगल से ईंधन का बोझा लेकर लौट रहे थे तो अकस्मात् भयंकर आँधी तूफान चलने लगा जिस कारण वह मार्ग चूक गये और एक सिंचाई वाले कुंए में गिर गये जो कि खेतों के समतल ही था। कुआं अधिक गहरा नहीं था। इसलिए भाई जी गर्दन तक ही डूबे और वह वहीं बोझा उठाए गुरूवाणी का उच्चारण करने में व्यस्त हो गये। सूर्य उदय होने पर जब किसान अपने खेतों में आया तो उसने कुएं में से आवाज आती सुनी। उसने पाया कि यह तो गुरूदेव का सिक्ख भाई मंझ है जो सदैव सेवा में लीन रहता है। उसने तुरन्त गुरूदेव को सूचना भेजी कि आपका सेवक कुएं में गिर गया है और भाई जी को कुएं से बाहर निकालने का प्रयास करने लगा। गुरूदेव सूचना पाते ही उसी क्षण दुर्घटना स्थल के लिए चल पड़े। कुएं पर गुरूदेव ने भाई जी को आवाज लगाई कि मंझ

जी लकड़ियां फैंक दो और रस्सी थाम कर बाहर आ जाओ किन्तु भाई जी ने उत्तर दिया कि पहले लकड़ियाँ बाहर निकालो क्योंकि इनकी लंगर में आवश्यकता है, इन्हें भीगने नहीं देना, यदि ये भीग गई तो लंगर में विघ्न उत्पन्न होगा। गुरूदेव ने उनकी इच्छा अनुसार ही किया। जब भाई मंझ जी को बाहर निकाला गया तो गुरूदेव ने उन्हें आलिंगन में ले लिया और आशीष दी –

मंझ प्यारा गुरू को गुरू मंझ प्यारा।
मंझ गुरू का बोहिथा जग लंघन हारा।

और कहा – भाई मंझ जी, हम चाहते हैं कि आप कुछ मांगे, गुरू नानक के दर पर आपने बहुत सेवा की है। इस पर भाई जी कहने लगे कि कृपा सिंधू यदि आप कृपालु हुए हैं तो मेरी एक विनती स्वीकार करें कि आइंदा किसी भी सेवक की इतनी कड़ी परीक्षा न लिया करें। गुरूदेव ने उन्हें आश्वासन दिया कि ऐसा ही होगा किन्तु आप अपने लिए कुछ माँगो। यह तो आपने परहित के लिए माँगा है। किन्तु भाई जी का मानना था कि मुझे केवल गुरू कृपा ही चाहिए। यही मेरे लिए पर्याप्त है।

गुरूदेव ने भाई तीर्था (मंझ) जी को उनके पैतृक गाँव में सिक्खी प्रचार के लिए नियुक्त किया। भाई जी ने अपने विनम्र स्वभाव से समस्त क्षेत्र को गुरू नानक का शिष्य बनाया और सखी सरवर के कर्मकाण्डों से मुक्ति दिलवाई।

गुरू घर के कीर्तनीये, सत्ता व बलवंड का रूठना

भाई मरदाना जी की अंश में से दो रबाबी भाई सत्ता जी व बलवंड जी, श्री अर्जुन देव जी के दरबार में प्रतिदिन प्रात:काल नियमानुसार कीर्तन (चौकी भरा) किया करते थे। कीर्तन के आकर्षण से स्वाभाविक ही था कि संगत प्रात:काल के दीवान में अधिक एकत्र हुआ करती थी, इसलिए कीर्तनी भाइयों को अभिमान हो गया कि हमारे द्वारा कीर्तन करने पर ही गुरू के दरबार की शोभा बनती है। यदि हम कीर्तन न करें तो गुरू घर की रौनक समाप्त हो जायेगी। उन्हीं दिनों उनकी बहन का शुभ विवाह निश्चित हो गया। उन्होंने गुरूदेव के समक्ष वेतन के अतिरिक्त आर्थिक सहायता की याचना की। इस पर गुरूदेव ने कहा कि आप की उचित सहायता की जायेगी। किन्तु उन दिनों वर्षा न होने के कारण देश में अकाल पीड़ितों की संख्या लाखों में पहुँच गई थी। गुरूदेव जी का ध्यान अकाल पीड़ितों की सहायता पर केन्द्रित था। सूखे के कारण दूर-दराज से संगत का आवागमन भी कम था, इसलिए गुरू घर की आय में भी भारी कमी आ गई थी। दूसरी ओर 'हरि मन्दिर' के निर्माण कार्यो पर भी भारी राशि व्यय हो रही थी। गुरुदेव का सिद्धान्त था कि धन संचित करके न रखा जाये। अत: गुरूदेव के कोष में संचित धन का प्रश्न ही नहीं था। वह तो जैसे धन आता उस प्रकार उसका उचित प्रयोग कर देते थे।

कीर्तनी भाइयों ने गुरूदेव को एक विशेष दिन की समस्त आय (चढ़ावा) उनको देने की प्रार्थना की। गुरूदेव ने उनकी इच्छा सहर्ष स्वीकार कर ली, परन्तु विडम्बना यह कि अकाल के प्रकोप के कारण उस दिन संगत का जमावड़ा बहुत कम हुआ, जिस कारण 'कार भेंट' (चढ़ावा) की राशि बहुत ही कम हुई। गुरूदेव ने उस दिन की समस्त कार भेंट सत्ता व बलवंड भाइयों को ले जाने को कह दिया। किन्तु उनके कथन अनुसार वह धन चौथाई था। जब उनकी आशाओं की पूर्ति न हुई तो रोष प्रकट करने लगे। इस पर गुरूदेव ने उन्हें समझाया कि हमने सहर्ष ही, आपकी इच्छा के अनुसार दिया है। इसमें रूष्ट होने की क्या बात है ? उत्तर में रबाबी भाइयों ने गुरूदेव पर आरोप लगाया कि आपने संगत को इस दिन कार भेंट अर्पण करने से वर्जित कर रखा है, इसलिए तुच्छ धन ही भेंट में आया है। गुरूदेव ने उन्हें सांत्वना दी और कहा – प्रभु भली करेंगे। आप अगले दिन की भी कार भेंट ले जाये। किन्तु वे नहीं माने और कटु वचन कहते हुए घर को चले गये। दूसरे दिन वे सुबह के समय कीर्तन करने भी दरबार में उपस्थित न हुए। गुरूदेव ने एक सेवक को सत्ता व बलवंड के घर, उनको बुला लाने को भेजा। परन्तु वे लोग योजनाबद्ध कार्यक्रम अनुसार विद्रोह करके बैठे हुए थे। उन्होंने गुरूदेव के सेवक का अपमान कर दिया और अभिमान में कहने लगे कि हमीं से गुरू दरबार की शोभा बनती है। यदि हम कीर्तन न करें तो कभी संगत का जमावड़ा हो ही नहीं सकता और हमें ही धन के लिए तरसना पड़ रहा है। गुरूदेव ने यह कड़वा उत्तर सुना, परन्तु धैर्य और नम्रता की मूर्ति, एक बार स्वयँ उनको मनाने उनके घर पहुँचे। रबाबी भाइयों ने इस बार भी गुरूदेव का स्वागत न करके उनको कटु वचन कह डाले किन्तु गुरूदेव शान्त बने रहे। गुरूदेव ने उन्हें बहुत समझाया परन्तु वे अपनी हठधर्मी पर अड़े रहे और कहने लगे कि हमारे ही पूर्वज थे भाई मरदाना जी, जिनके कीर्तन से गुरू नानक देव जी को प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी।

श्री गुरू अर्जुन देव जी ने जब यह वाक्य उनके मुँह से सुना तो वह अपने पूर्वज गुरूजनों का अपमान सहन ही न कर सके। वह तुरन्त वहाँ से लौट आये और समस्त संगत को आदेश दिया कि इन गुरू निंदकों को कोई मुँह न लगाये। यदि हम से किसी व्यक्ति ने इनकी सिफारिश की तो हम उसका मुँह काला करके गधे पर बिठा कर उसके गले में पुराने जूतों की माला डालेंगे और समस्त नगर में उसका जलूस निकालेंगे। यह कड़े आदेश सुनकर समस्त संगत सतर्क हो गई। किसी व्यक्ति ने भी उनको मुँह न लगाया।

जल्दी ही रबाबी भाइयों का भ्रमजाल टूट गया। उनके पास कोई और जीविका अर्जित करने का साधन तो था नहीं, इसलिए उनकी आर्थिक स्थिति पर संकट के बादल छा गये। दूसरी तरफ गुरूदेव स्वयँ कीर्तन करने लगे। उन्होंने बाल्यकाल में गुरू घर के कीर्तनीयों से कीर्तन व संगीत की विद्या प्राप्त की हुई थी। उन्होंने संगत को प्रोत्साहित किया कि आज से हम स्वयँ मिलजुल कर कीर्तन किया करेंगे। वैसे भी कुछ गुरू सिक्ख परिवर्तन चाहते थे और उनके हृदय में भी कीर्तन करने की तीव्र अभिलाषा थी। जैसे ही गुरूदेव जी ने अपना प्रिय वाद्य सिरंदा लेकर

मंच पर कीर्तन करना प्रारम्भ किया, कुछ भक्तजन अन्य वाद्य लेकर साथ में बैठ गये और सहज भाव से कीर्तन करने में सहयोग देने लगे। प्रभु कृपा से समां ऐसा बंधा कि उनको अन्य दिनों की अपेक्षा आन्तरिक आनन्द की अनुभूति हुई। जिससे समस्त संगत को मनोबल मिला। इस प्रकार गुरूदेव ने संगत को आदेश दिया कि प्रतिदिन हम सभी मिलकर प्रभु स्तुति किया करेंगे। जो कि हर दृष्टिकोण से फलदायक होगी। इस प्रकार गुरूदेव ने सिक्ख जगत में एक नई परम्परा प्रारम्भ कर दी कि संगत में से कोई भी कीर्तन करने के योग्य है।

दूसरी तरफ रबाबी सत्ता जी व बलवंड जी गरीबी के कारण रोगी हो गये। कोई भी उनको गुरू शापित जानकर सहायता न करता, इसलिए वे अनेको कष्ट भोगने लगे। किन्तु एक भक्तजन ने उन्हें दुखी जानकर, उनका मार्गदर्शन किया और उन्हें बताया कि एक व्यक्ति लाहौर नगर में रहता है। जिन्हें लोग भाई लद्धा परोपकारी कह कर सम्बोधन करते हैं, वह लोगों के बिगड़े काम करवा देते हैं और हर प्रकार की सहायता करते हैं। यदि वह आप को गुरूदेव से क्षमा दिलवा दें तो आपके कष्टों का निवार्ण हो सकता है। रबाबियों को ये परामर्श उचित जान पड़ा और वे लाहौर नगर पहुँच गये। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार करते हुए क्षमा याचना के लिए भाई लद्धा जी से विनती की, जो उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर ली। भाई लद्धा जी ने गुरू आदेश अनुसार स्वयँ को दण्ड देने के लिए स्वांग रच लिया। पहले अपना मुँह काला कर लिया। फिर गले में जूतों की माला पहन कर गधे पर सवार हो गये और पीछे ढोल बजवाना शुरू कर दिया। इस प्रकार वह गुरू दरबार में उपस्थित हो गये। गुरूदेव ने उनका स्वांग देखा और मुस्कुरा दिये और कहा – भाई लद्धा जी, आप वास्तव में परोपकारी हैं। आपकी सिफारिश हम नहीं टाल सकते। अत: हम इन रबाबियों को क्षमा करते हैं। यदि दोनों भाई पूर्वज गुरूजनों की स्तुति करें। रबाबियों भाइयों ने गुरूदेव के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया और कहा – हम अपने किये पर शर्मिंदा हैं। हमें अब तक बहुत दण्ड मिल चुका है और वे पूर्व गुरूजनों की स्तुति में छंद उच्चारण करने लगे। इन रचनाओं को बाद में गुरूदेव ने मानता प्रदान कर दी और अपने नये सम्पादित ग्रंथ में सम्मिलित कर लिया, जिन्हें आज सत्ता-बलवंड की 'वार' कहा जाता है।

जलोधर रोग का निवारण

सम्राट अकबर के सलाहकार जिनको उपमन्त्री की उपाधी से सम्मानित किया गया था और जिनका नाम वज़ीर खान था, जलोधर रोग से पीड़ित रहने लगे। वह अपने उपचार के लिए अपने निवास स्थान लाहौर आये और बहुत उपचार किया किन्तु रोग का निवारण नहीं हुआ। वह स्थानीय पीर साई मीया मीर जी के पास गये कि वह उनके रोग निवारण के लिए अल्लाह से ईबादत करें। इस पर साई जी ने उन्हें संत्वाना दी और कहा – मैं आप को एक कलाम सुनने को कहुगा जो आप नित्य प्रात: काल सुने। अल्लाह ने चाहा तो आप को रोग से राहत मिलेगी। वज़ीर खान ने तुरन्त उनका परामर्श स्वीकार कर लिया और कहा – वह कलाम मुझे सुनाये। साई जी ने उस सिख को बुला लिया जो प्रतिदिन नियम वद्ध सुखमनी साहब पढ़ता था और उससे कहा – आप कृप्या वज़ीर खान को सुखमनी साहब का पाठ सुना करें, क्योंकि यह रोग ग्रसित है और इनका मन बेचैन रहता है। कम से कम मन तो शान्त अवस्था में आ जाएं। यदि मन का शान्ति मिल गई तो शरीरिक रोग भी हट जाएगा।

इस सिख का नाम भाग सिंघ था किन्तु लोग उन्हें प्यार से भानु जी कह कर सम्बोधन करते थे। सिख ने साई जी के आदेश अनुसार वज़ीर खान को प्रतिदिन सुखमनी साहब की वाणी सुनानी शुरू कर दी। सुखमनी साहब के उच्चरण समय खान साहब को बहुत राहत मिलती, वह इस ब्रह्मज्ञान मय वाणी को सुनकर अपना दुख भुल जाते और एकागर हो स्थिर हो जाते। वह इस सिख के प्रतिश्रद्धा रखने लगे किन्तु एक दिन भाई भानु जी ने वज़ीर खान से कहा – कृप्या आप उन महापुरूषों से मिलें जिनकी यह रचना है, वह पूर्ण पुरुष हैं, हो सकता है आप पर उनकी कृपा दृष्टि हो जाएं तो शायद आप का रोग ही दूर हो जाए। वज़ीर खान ने तुरन्त निश्चय किया कि वह अमृतसर जाएगा और गुरू दरबार में उपस्थित होकर अपने रोग निवारण के लिए गुरू चरणों में प्रार्थना करेगा। इस प्रकार वज़ीर खान पालकी में सवार होकर श्री गुरू अरजन देव जी के दर्शनों को अमृतसर पहुँचा। गुरूदेव उस समय सरोवर के निर्माण कार्य का निरीक्षण कर रहे थे। संगत सरोवर से मिट्टी अथवा गारा टोकरियों में भर-भर कर बाहर निकाल कर ला रही थी। इन में बाबा बड्ढ़ा जी भी सम्मिलित थे। कहारों ने वज़ीर खान को पालकी से निकाल कर गुरूदेव के सम्मुख लेटा दिया और वज़ीर खान गुरूदेव से याचना करने लगा मुझ गरीब पर भी दया करें मैं बहुत कष्ट में हूँ। गुरूदेव ने शरणागत की याचना बहुत गम्भीरता से सुनी और उसे धैर्य रखने को कहा – इतने में सिर पर गारे की टोकरी उठाये बाबा बड्ढ़ा जी गुरूदेव के सामने से गुजरने लगे। गुरूदेव ने उन्हें सम्बोधन कर के कहा – आप इस अभ्यागत का कष्ट निवारण के लिए कोई उपाये करें। बाबा बुड्ढ़ा जी ने उत्तर में अच्छा जी कहा और गारे की टोकरी दूर फेक कर उसी प्रकार अपने कार्य में व्यस्त हो गये। कुछ ही देर में वह फिर गारे की टोकरी सिर पर उठाये चले आये, गुरूदेव ने उन्हें फिर कहा – आप इनके उपचार के लिए कुछ अवश्य करें। उत्तर में बाबा जी ने फिर अच्छा जी कुछ करता हूं और वह पुन: सरोवर का गारा लेने चले गये। इस बार उनको गुरूदेव ने जैसे ही संकेत किया उन्होंने टोकरी का समस्त गारा वज़ीर खान के फूले हुए पेट पर बहुत वेग से पलट दिया बहुत वेग से गारा पेट पर पड़ते ही पेट के एक कोने में छेद (पंचर) हो गया और पेट में भरा मवाद बाहर निकल गया। तुरन्त शैल्य चिकित्सक (जर्राह) को बुलाकर उनके पेट में टांके इत्यादि लगवा कर उपचार किया गया। धीरे-धीरे वह सामान्य अवस्था में आने लगे और कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ्य होकर गुरूदेव का धन्यवाद करने लगे। वज़ीर खान के एक निकटवर्ती ने एक दिन बाबा बड्ढ़ा जी से पूछा आप को गुरूदेव ने तीन बार बज़ीर खान का उपचार करने को कहा आप ने उनकी आज्ञा पर पहली बार गारा उन पर क्यों नहीं फेका? उत्तर में बाबा जी ने कहा – गुरूदेव पूर्ण समर्थ है परन्तु वह अपने भक्तों को मान-सम्मान देते है अत: हमने उनकी आज्ञा अनुसार अपने हृदय को प्रार्थना द्वारा प्रभु चरणों में जोड़ लिया था जब प्रार्थना सम्पूर्ण हुई तो हमने संकेत पाते ही

गारा वज़ीर खान के पेट पर दे मारा था। हमारा कार्य तो एक बहाना मात्र था। बरकत तो प्रार्थना और गुरूदेव के वचनों की थी।

भाई बहिलो जी

भाई बहिलो जी पँजाब के मालवा क्षेत्र के निवासी थे। आप जी भी सखी सरवर की उपासना करते थे परन्तु आध्यात्मिक प्राप्तियों के लिए संघर्ष करना आपका मुख्य प्रयोजन था। एक दिन आप को कुछ पड़ोसियों ने प्रेरणा दी कि आप श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी श्री गुरू अर्जुन देव जी की शरण में जाओ, जहां आप को शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी। आप जी सिक्खों के एक जत्थे के साथ इस अभिलाषा को लेकर अमृतसर दर्शनों को आ पहुँचे। उन दिनों श्री गुरू अर्जुन देव जी रामदास सरोवर के मध्य में हरि मन्दिर नामक भवन निर्माण का कार्य प्रारम्भ करवाने जा रहे थे। इस कार सेवा (श्रम दान) के लिए दूरदराज से संगतें बड़े काफिलों के रूप में एकत्रित होकर आ रही थी। उस समय गुरूदेव के समक्ष ज्वलंत समस्या यह थी कि उच्च श्रेणी की ईटे कहाँ से मंगवाई जाये। गुरूदेव ने निर्णय लिया कि ईटों का उत्पादन अपना ही होना चाहिए। अत: ईटों के लिए आँवा लगाया गया। एक विशेषज्ञ ने सुझाव दिया कि यदि आँव में उपलों की आँच का प्रबन्ध हो जाये तो धीमी, एक गति की आँच से ईटे उम्दा और लाल बनती हैं। लकड़ी इत्यादि ईधन का प्रबन्ध तो सहज में हो सकता था, परन्तु उपले जुटा पाना बहुत कठिन कार्य था। इसका कारण यह था कि किसान गोबर को खेत में खाद के लिए प्रयोग करते थे और ग्रामीण स्त्रियाँ उपलों का प्रयोग रसोई घर के ईधन के रूप में करती थी, अत: गोबर का अभाव स्पष्ट था। इसलिए इस सुझाव पर कार्य करना असम्भव लग रहा था। जब यह बात भाई बहिलो जी को मालूम हुई तो उन्होंने यह सेवा करने का संकल्प ले लिया। किन्तु उसके मार्ग में भी गोबर के अभाव की समस्या सामने आई। इस बीच उनको मालूम हुआ कि धीमी आँच के लिए किसी भी जीव के मैले को प्रयोग में लाया जा सकता है। अत: उन्होंने पहले पहले घोड़ों और अन्य पशुओं का मैला एकत्र कर आँवे में डालना प्रारम्भ किया परन्तु यह मैला भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न था। अन्त में आप ने मनुष्यों आदि का मैला आवे में डलवाने की योजना बनवाई। आप जी समस्त सफाई कर्मचारियों से मिले, उन्हें विश्वास में लिया और उन्हें प्रेरित किया कि वह मैला आवे में डालें और स्वयँ भी उनका साथ देने लगे। उन दिनों मैला ढोना समाज में निम्न श्रेणी का कार्य माना जाता था। साधारणत: यह कार्य कोई नहीं करता था, परन्तु भाई बहिलो जी ने निष्काम सेवा की अभिलाषा से निम्न स्तर का कार्य करने में कोई घृणा नहीं की, उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान आदर के पात्र थे। वह गुरूदेव के प्रवचन प्रतिदिन सुनते थे कि किरत-कार (परिश्रम) कोई भी हो, गुरू घर में स्वीकार्य है। अत: आप जी ने अपने हृदय को नाम-स्मरण से इतना उज्ज्वल कर लिया था कि आपको प्रत्येक मनुष्य एक जैसा ही दिखाई देता था। सेवा सम्पूर्ण हुई, आवा पकाया गया। जब आवा खोल कर गुरुदेव ने ईटे देखी तो वे उत्तम श्रेणी की लाल थी। गुरूदेव बहुत प्रसन्न हुए। जब उन्हें बताया गया कि इस कार्य के लिए सबसे बड़ा योगदान बहिलो जी का है तो उन्होंने बहिलो जी को अपने सीने से लगाया और आशीष दी - भाई बहिलो ! सब से पहले अर्थात बहिलो जी को सेवकों की श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त होगा।

भाई बहोड़ू जी

पँजाब के मालवा क्षेत्र में बराड़ कबीले निवास करते थे। अधिकांश मालवा क्षेत्र रेगिस्थान जैसा ही है, क्योंकि उन दिनों यहाँ सिंचाई सुविधाएं नहीं थी। खेती वर्षा पर निर्भर करती थी। कई बार सूखे के कारण अकाल पड़ जाता, जिससे गरीबी-भूखमरी चारों ओर दिखाई देती। एक वर्ष वर्षा न होने के कारण खेती नष्ट हो गई। ऐसे में यहाँ का एक स्थानीय किसान बहोड़ू गरीबी के कारण गिरोह बनाकर लूटपाट करने लगा। एक दिन उनसे छीना-झपटी में एक गरीब निर्दोष व्यक्ति मारा गया। उनको इस घटना से अपने पर बहुत ग्लानि हुई, हृदय प्रायश्चित करना चाहता था। अत: वह किसी पूर्ण पुरूष की खोज में घर से निकल पड़े, जहाँ चाह वहाँ रहा, वह भटकते भटकते अमृतसर श्री गुरू अर्जुन देव जी के चरणों में उपस्थित हुआ। गुरुदेव के सम्मुख उन्होंने अपने मन की व्यथा कह सुनाई। गुरूदेव ने उन्हें सांत्वना दी और निष्काम सेवा सिमरण में व्यस्त रहने को कहा - भाई बहोड़ू जी ने मन से वचनों का पालन किया और तन मन से समर्पित होकर मानवता की सेवा करने लगे। उनकी सेवा रंग लाई और उनकी आराधना ने उन्हें डाकू से भक्त बना दिया। गुरूदेव ने उनके जीवन में परिवर्तन देखा। उनका कायाकल्प हो चुका था। एक दिन गुरूदेव ने उन्हें आदेश दिया कि आप अपने घर चले जायें। वहीं घर-गृहस्थी में रहकर दीन-दुखियों की सेवा करें। इसी विधि से आपका कल्याण होगा।

भाई बहोड़ू जी घर लौट आये और प्रभु चिन्तन में समय व्यतीत करने लगे। अब वह हरि यश करने के लिए संगत को एकत्र करते और अभ्यागत की तन मन से सेवा करते। उनके हृदय परिवर्तन की पूरे क्षेत्रमें चर्चा होने लगी। आप जी संगत को प्रेरित करते कि वे भी गुरू दर्शनों को जायें। इस प्रकार आपने कई जत्थे बनाकर समय समय पर संगत को अमृतसर भेजा। एक दिन एक युवक आप के पास गुरू दर्शनों की अभिलाषा लेकर आया कि आप किसी जत्थे के संग उसे गुरूदेव के पास भेजें। आपने उस युवक को एक सिक्ख जानकर अभ्यागत के रूप में तन मन से सेवा की, उसे अपने घर ही ठहराया और कुछ दिन प्रतीक्षा करने को कहा - ताकि कुछ और लोग तैयार हो जायें। जिससे जत्था बन सके। भाई जी के परिवार के सदस्य उस युवक अभ्यागत की टहल-सेवा करने लगे। भाई जी की एक युवा पुत्री थी, जिसके विवाह के लिए वह विचार कर रहे थे, किन्तु अभी आप की दृष्टि में सुयोग्य वर नहीं था। अत: आप किसी गुरू-सिक्ख युवक की खोज में थे। इस

अज्ञात अभ्यागत युवक को भोजन करते अथवा टहल-सेवा करते समय आपकी युवा पुत्री युवक के आकर्षण में आ गई। वे एक दूसरे को चाहने लगे। जल्दी ही चाहत प्रेम में बदल गई। यह बात आप की पत्नि को ज्ञात हो गई किन्तु वह शान्त रही क्योंकि वह जानती थी कि जल्दी ही युवक तीर्थ यात्रा पर अमृतसर जत्थे के साथ चला जायेगा और बात यहीं समाप्त हो जायेगी किन्तु इससे पहले कि जत्था तीर्थ यात्रा पर जाता, एक रात भाई जी ने युवा जोड़ी को प्रेम-क्रीड़ा में इक्टठे सोते हुए पाया। उन्होंने उस समय विवेक बुद्धि से काम लिया और धैर्य रखते हुए अपनी चादर उन पर डाल दी। निन्द्रा टूटने पर युवती ने अपने पर पिता की चादर देखी तो वह भयभीत हो गई। उसने युवक को घटनाक्रम से अवगत करवाया। युवक को भूल का अहसास हुआ और वह भी भयभीत होकर धीरे से समय रहते घर से निकल गया। युवती ने अनैतिक अपराध के लिए पिता जी से क्षमा याचना की। इस पर भाई बहोड़ू जी ने पूछा कि वह अभ्यागत युवक अब है कहाँ? युवक की खोजबीन हुई। किन्तु वह कहीं नहीं मिला। युवती ने कहा - यदि मेरे प्रेम में शक्ति होगी तो वह अवश्य ही लौट आयेगा। वैसा ही हुआ अध रात्रि को दीवार फांद कर युवक चुपके से अन्दर घुसा और सीधा युवती के पास पहुँचा। उसने युवती से कहा - मैं अब तो तेरे बिना रह ही नहीं सकता। इसलिए तुम मेरा मार्गदर्शन करो। यदि कहो तो मैं तुम्हारे पिता जी के समक्ष आत्म समर्पण कर दूं अथवा हम दोनों भाग चलें। इस पर युवती ने कहा - अब भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि मेरे पिता का हृदय परिवर्तन हो गया है। वह पहले जैसे कठोर निर्दयी, खूंखार नहीं रहे, क्योंकि वह अब गुरू वाले हैं और भजन-बंदगी ने उनका जीवन बदल दिया है। वह अब प्रत्येक कार्य में उस प्रभु की इच्छा का अनुभव करते हैं और उनके रोम रोम में मानवमात्र के लिए प्रेम ही प्रेम भरा पड़ा है। यह जानकारी प्राप्त होते ही अभ्यागत युवक ने भाई बहोड़ू जी को अपने लौट आने की सूचना दी। भाई बहोड़ू जी ने बड़े ही शान्त भाव से युवक को विश्राम करने का कहो। अगले दिन युवक ने बहोड़ू जी के चरण पकड़ लिये और कहा - आवेश में हम से भयंकर भूल हुई है, मुझे क्षमा दान दें। उदारवादी भाई बहोड़ू जी द्रवित हो गये। उन्होंने युवक को आलिंगन में लिया और कहा - मुझ में इतनी क्षमता नहीं है कि अपराध-निरपराध का निर्णय कर सकूं। इस कार्य के लिए अब तुम दोनों को गुरूदेव के समक्ष उपस्थित होकर प्रायश्चित करना होगा।

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार भाई बहोड़ू जी श्रद्धालुओं का जत्था लेकर अमृतसर पहुँचे। इस बार इस जत्थे में उनकी अपनी पुत्री तथा वही अभ्यागत युवक भी था। गुरूदेव ने बच्चों की याचिका पर गम्भीरता से विचार किया और अपना निर्णय सुना दिया कि इन दोनों का आनन्द कारज सम्पन्न कर दिया जाये। जिससे ये दोनों दांपत्य जीवन सुखमय जी सकें।

भाई कटारू जी

श्री गुरू अर्जुन देव जी के दरबार में अफगानिस्तान से सिक्खों का एक काफिला दर्शनों के लिए उपस्थित हुआ। इस काफिले के एक सिक्ख भाई कटारू जी ने गुरू चरणों में प्रार्थना की कि हे गुरूदेव ! मुझे जीवनयुक्ति बतायें, जिससे पुर्नजन्म का चक्र समाप्त हो जाये। उत्तर में गुरूदेव ने कहा, शुभ कर्म ही आवागमन के चक्र से छुटकारा दिलवा सकते हैं। अत: धर्म की कीरत (छलकपट रहित परिश्रम) करनी चाहिए अर्थात जीविका अर्जित करते समय धोखा फरेब नहीं होना चाहिए।

भाई कटारू जी ने गुरू उपदेश को गाँठ में बांध लिया और इस पर दृढ़ निश्चय से जीवन यापन की शपथ ली। वह अपने देश लौट कर अपने कार्यक्षेत्र में बहुत ईमानदार हो गये। उनकी नियुक्ति सरकारी भण्डार में थी, जहाँ जनता को उचित मूल्य पर रसद वितरण की जाती थी। उनके सहकर्मी उनकी इस ईमानदारी पर असन्तुष्ट हो गये क्योंकि वह न तो बेइमानी करते और न ही किसी को करने देते। इसलिए वह सहकर्मियों की आँखों में रकड़ने लगे। एक दिन सहकर्मियों ने मिलकर भाई कटारू जी के विरूद्ध षड्यन्त्र रचा। उनके बाट इस अंदाज से बदल दिये गए कि उनको इस बात पर कोई अन्देशा नहीं हुआ। भाई जी के बाट पूरे वजन के थे किन्तु अब नया बाट पाँच पैसे के वजन के बराबर कम था अर्थात 25 ग्राम भार की कमी उस में थी। किन्तु भाई जी इस विषय में अनजान थे। षड्यन्त्रकारियों ने किसी ग्राहक से स्थानीय हाकिम (वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी) को शिकायत की कि आप का भण्डारी कटारू तोल में हेराफेरी करता है। उसने बाटों में कटौती की हुई है। बस फिर क्या था, अधिकारी ने भाई कटारू जी को उनके बाटो सहित अपने कार्यालय में बुला लिया और उनके बाट दूसरे बाटो की तुलना के लिए बराबर तराजू पर पलट पलट कर तोल कर देखे गये किन्तु वह पूरे निकले। षड्यन्त्रकारियों की चाल निष्फल हो गई और उन्हें झूठी शिकायत पर बहुत फटकार मिली। हुआ यूँ, जैसे ही भाई कटारू जी को अहसास हुआ कि मैं षड्यन्त्र का शिकार बनने जा रहा हूँ। उन्होंने गुरू चरणों में प्रार्थना प्रारम्भ कर दी कि वह सत्य पर आधारित जीवन व्याप्त कर रहे हैं। यदि मैं इस समय षड्यन्त्र का शिकार हो जाता हूँ तो सभी ने मुझे नहीं, आप को बुरा भला कहना है क्योंकि मैं आप का शिष्य हूँ और लोगों ने कहना है, बड़ा गुरू वाला बनता फिरता है, करतूत तो देखो, बेइमानी ही इसका लक्ष्य है। मुझ से आप की निन्दा सहन नहीं होगी। कृपया आप पूर्ण पुरुष साक्षात प्रभु में अभेद हैं, अत: आप अपने बिरद की लज्जा रखें।

दूसरी तरफ उस समय गुरूदेव का दरबार सजा हुआ था, भक्तगण की सत्य हृदय की पुकार समर्थ गुरू तक पहुँची। गुरूदेव सुचेत हुए और उन्होंने वह पाँच पैसे अपनी हथेली पर रखे जो कि कुछ क्षण पहले ही एक सिक्ख उनको अपनी धर्म की कीरत में से दर्शन भेंट रूप में दे गया था। कुछ क्षण पश्चात् वही पाँच मोटे ताँबे के सिक्के दूसरी हथेली पर रखे। इस प्रकार उन्होंने दो तीन बार उलट-पलट कर पैसे हथेलियों पर तोले जैसे किसी तराजू का पसकू देख रहे हो। साधारणत: गुरूदेव धन से उपराम ही रहते थे किन्तु आज संगत कुछ और ही देख रही थी।

उस समय साहस बटोर कर एक सिक्ख ने पूछ ही लिया कि आज आप एक विशेष शिष्य की भेंट से इतना लगाव क्यों कर रहे हैं जबकि आप माया को कभी स्पर्श भी नहीं करते। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा – समय आयेगा इस बात का रहस्य प्रकट करने वाला स्वयँ ही यहाँ आयेगा।

लगभग एक महीने के पश्चात् भाई कटारू जी छुट्‌टी लेकर काबुल से अमृतसर गुरूदेव के दर्शनों को आये और वह गुरू चरणों में नतमस्तक हो दण्ड्वत प्रणाम करने लगे। उन्होंने गुरूदेव का आभार व्यक्त करते हुए कहा – आपने मुझ तुच्छ प्राणी की लज्जा हाकिम के दरबार में समस्त विरोधियों के बीच में रख ली। मैं उसके लिए आप का सदैव ऋणी रहूँगा। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा – वास्तव में आपकी प्रार्थना और श्रद्धा रँग लाई थी, हमारा तो बिरद है – भक्तों की कठिन समय में सहायता करना।

भाई त्रिलोका जी

गुरू श्री अर्जुन देव जी के दरबार में अफगानिस्तान के गजनी क्षेत्र से संगत गुरू दर्शनों को आई। अमृतसर पहुँचने पर गुरूदेव की ओर से उनका भव्य स्वागत किया गया। संगत में से एक त्रिलोका नामक व्यक्ति ने गरूदेव के समक्ष निवेदन किया कि हे गुरूदेव ! मुझे प्रभु दर्शनों की तीव्र अभिलाषा है। कृपया मुझे युक्ति प्रदान करें, जिससे मैं उस स्वामी के दर्शन कर सकूँ। गुरूदेव त्रिलोका जी की अभिलाषा पर रीझ उठे। प्रसन्न हो कर उपदेश दिया कि समस्त प्राणीमात्र उस प्रभु की रचना है। वह स्वयँ अपनी रचना में विराजमान हैं अर्थात समस्त जीव उसी के अंश हैं, वही सभी का पिता है, इसलिए सभी पर दया करनी चाहिए। इस प्रकार हम उस प्रभु को रिझाने में सफल हो सकते हैं और वह हमें अपनी रचना में दिखाई देने लग जायेगें।

भाई त्रिलोका जी ने गुरूदेव के प्रवचनों को समझा और उन पर आचरण करने का मन बनाकर वापिस गजनी आ गया। उनकी नियुक्ति सेना में थी। उनका अधिकारी सैनिकों को प्रशिक्षण देने के लिए समय समय पर कवायत करवाता रहता था, जिसके अनुसार कुछ दिनों के पश्चात् जंगल में शिकार खेलने जाना होता था। अधिकारियों का मानना था कि शिकार करना एक अच्छा सैनिक प्रशिक्षण है। एक दिन सैनिक अधिकारियों के साथ भाई त्रिलोका जी को शिकार पर जाना पड़ा, अकस्मात् एक हिरनी त्रिलोका जी के सामने पड़ गई। उन्होंने हिरनी के पीछे घोड़ा भगाया और इस हिरन को तलवार से दो भागों में काट दिया। हिरनी गर्भवती थी। अत: उसके बच्चे भी भाई त्रिलोका जी के समक्ष मर गये। इस दुर्घटना का भाई जी के कोमल हृदय पर गहरा आघात हुआ। वह प्रायश्चित करने लगे किन्तु अब क्या हो सकता था ? उन्होंने स्वचिंतन प्रारम्भ किया और पाया कि यदि मेरे पास घातक शस्त्र न होतो तो यह हत्या सम्भव ही नहीं थी। अत: उन्होंने इस्पात (फौलाद) की तलवार के स्थान पर लकड़ी की तलवार बनाकर धारण कर ली।

समय व्यतीत होने लगा। एक दिन सैनिक अधिकारी ने अकस्मात् सभी जवानों के शस्त्र निरीक्षण किया ! उसने आदेश दिया कि सभी जवान एक कतार में खड़े हो जायें और अपने अपने शस्त्रों का मुआयना करवायें। भाई त्रिलोक जी यह हुक्म सुनते ही सकते में आ गये। उनको अहसास हुआ कि उनसे भूल हुई है, यदि काठ की तलवार उसके अधिकारी ने देख ली तो नौकरी तो गई, इसके साथ दण्ड रूप में गद्दारी का आरोप भी लगाया जा सकता है। ऐसे में उनका ध्यान गुरू चरणों में गया। वह मन ही मन प्रार्थना करने लगे – हे गुरुदेव ! मैं विपत्तिकाल में हूँ। मुझे आपके अतिरिक्त कहीं और से सहायता सम्भव ही नहीं है। अत: मेरी लज्जा रखें और मुझे इस संकटकाल से उभार लें।

दूसरी ओर अमृतसर में श्री गुरू अर्जुनदेव जी दरबार में विराजमान थे कि अकस्मात् उन्होंने एक सेवक को आदेश दिया कि तोशे खाने से वह एक तलवार लेकर आये। सेवक तुरन्त तलवार लेकर हाजिर हुआ। गुरुदेव ने वह म्यान में से बाहर निकाली और उसे घुमा फिरा कर संगत को दिखाने लगे जैसे कि शस्त्रों की तेजधार का निरीक्षण किया जा रहा हो। कुछ क्षणों बाद उसे फिर से म्यान में रखकर तोशेखाने में वापिस भजे दिया। संगत को इस प्रकार गुरूदेव द्वारा तलवार को हिलाकर दिखाना बहुत अद्‌भुत लगा। एक सेवक ने जिज्ञासा व्यक्त की और गुरूदेव से प्रश्न पूछ ही लिया। आज आप तलवार से क्यों खेल रहे हैं। उत्तर में गुरूदेव ने कहा – समय आयेगा तो आप स्वयँ ही इस भेद को भी जान जायेंगे।

भाई त्रिलोका जी प्रार्थना में खो गये। सभी जवान बारी बारी अपनी तलवारों का मुआयना करवा रहे थे आखिर त्रिलोका जी की बारी भी आ गई। उन्होंने गुरूदेव को हृदय में नाम लिया और उन्हें समर्थ जानकर म्यान से तलवार निकाल कर अधिकारी को दिखाई। तलवार की चमक अधिकारी की आँखों में पड़ी और वह चौंध्य गया। इसलिए उसने तलवार को अन्य सिपाहियों की अपेक्षा दो तीन बार पलट पलट कर देखा और आश्चर्य में पड़ गया और उसके मुख से निकला ईल्लाही – शमशीर अर्थात (अद्‌भुत तलवार) तभी उसने भाई त्रिलोका जी को पुरस्कृत करने की घोषणा कर दी। भाई जी इस चमत्कार के लिए गुरूदेव के लिए कृतज्ञता में अवाक् खड़े रहे और उनके नेत्रों से प्रेम की आँसू बह निकले। कुछ दिनों पश्चात् वह छुट्‌टी लेकर गुरूदेव के दरबार में अमृतसर हाज़िर हुए और उन्होंने बताया कि मैं संकटकाल में प्रार्थना कर रहा था कि हे गुरुदेव जी ! जैसे दुर्योधन के दरबार में द्रोपदी की, चीरहरण के समय, लज्जा रखी गई थी, ठीक इसी प्रकार आप मेरी सहायता में पहुँचे।

भाई छज्जू शाह व्यापारी

भाई छज्जू शाह जी लाहौर नगर में एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। आप का मुख्य व्यवसाय साहूकारी का था। आप हुण्डियों के आदान प्रदान में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके थे। प्राय: आप के पास लोग अमानती सामान भी रखा करते थे। एक बार एक काबुल नगर का पठान

व्यापारी आपके पास आया और उसने आप को एक सौ चौवालीस मोहरें अमानती रखने को दी और कहा - मैं अभी दिल्ली व्यापार के लिए जा रहा हूँ। कृपया रख लीजिए। मैं समय आने पर आप से ले लूँगा। छज्जू शाह जी ने वह थैली उठाकर अमानती सामान के संदूक में रख दी और फिर से अपने हिसाब किताब देखने में व्यस्त हो गये। वास्तव में वह इस समय हिसाब के आँकड़ों में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने पठान पर विशेष ध्यान नहीं दिया। पठान दिल्ली चला गया। कुछ माह में वह लौट कर आया तो भाई छज्जू से मिला और उनसे वही मोहरों वाली थैली की मांग की। भाई छज्जू जी ने आदर से उसे बिठाया और उसके नाम को अमानती सूचियों में देखना प्रारम्भ किया किन्तु उन्होंने पाया कि उसका नाम कहीं नहीं है। इस पर उस पठान व्यापारी ने अपनी थैली की जानकारी के लिए विशेष विवरण दिये और कहा - मैंने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी थी कि आप बहुत सच्चे, नेक और ईमानदार व्यक्ति हैं इसलिए मैंने आप पर विश्वास किया था, किन्तु अब आप ना कर रहे हैं। उत्तर में भाई छज्जू शाह जी ने कहा कि मैं कभी भी अमानत में खियानत नहीं करता, यह मेरा धर्म है। जब तुमने अमानती कोई वस्तु हमारे पास रखी ही नहीं तो वह हम कहाँ से दे। इस बात पर दोनों पक्षों पर टकराव हो गया, झगड़ा बढ़ गया क्योंकि पठान अपने धन का मोह कैसे त्याग सकता था। कुछ सूझवान व्यक्तियों ने इस मुकद्दमें को न्यायालय में ले जाने के लिए कहा - पठान ने अदालत का दरवाजा खटखटाया। अदालत ने पठान से कोई गवाही अथवा सबूत माँगा। उत्तर में पठान ने कहा - मैंने तो छज्जू शाह को भक्त जान कर उस पर पूर्ण विश्वास किया था और कोई रसीद भी नहीं ली थी। भाई छज्जू शाह से पूछताछ की गई तो उनका उत्तर था कि मैं किसी से धोखा अथवा बेइमानी नहीं करता। मेरे पास इस व्यक्ति का कोई अमानती सामान नहीं है। सबूत के अभाव में न्यायधीश ने दोनों को भयभीत करने के विचार से एक युक्ति सुझाई कि तुम दोनों का निर्णय भगवान पर छोड़ देते हैं क्योंकि तुम दोनों उस प्रभु, दिव्य ज्योति पर पूर्ण विश्वास करते हो। अत: एक गर्म तेल की कड़ाही में शपथ लेकर तुम दोनों हाथ डालों जो सच्चा होगा, उसका हाथ नहीं जलेगा, झुठे का जल जायेगा। इस प्रकार निर्णय हो जायेगा।

भाई छज्जू शाह गुरू का शिष्य था, उसे अपनी सच्चाई और ईमानदारी पर नाज़ था। दूसरी ओर पठान भी सच्चा था, किन्तु वह गर्म तेल में हाथ डालने से भय खा गया और डगमगा कर उसने अपना मुकद्दमा वापिस ले लिया। इस प्रकार मुकद्दमा खारिज हो गया। कुछ दिन व्यतीत हो गये। एक दिन भाई छज्जू जी अपनी दुकान की सफाई करवा रहे थे तो वह थैली कहीं नीचे दबी हुई मिल गई। थैली को देखकर छज्जू जी को ध्यान आ गया कि यह थैली उस पठान की ही है, जो हमारे ऊपर मुकद्दमे का कारण बनी थी। अब भाई छज्जू जी प्रायश्चित करने लगे और जल्दी ही उन्होंने उस पठान को खोज लिया, वह अभी अपने वतन वापिस नहीं लौटा था। भाई जी ने उससे क्षमा याचना करते हुए उसकी अमानत वह मोहरों वाली थैली लौटा दी। किन्तु पठान ने सच्चे होने पर भी बहुत हीनता का अनुभव किया था। थैली मिलने पर वह तिलमिला उठा। उससे फिर से अदालत का दरवाजा खटखटाया और न्याय की दुहाई दी। न्यायधीश ने समस्त घटनाक्रम को ध्यानसे सुना और भाई छज्जू शाह से प्रश्न किया कि जब पहला निर्णय आपके पक्ष में हो गया था। तो अब आपने यह सिक्को की थैली क्यों लौटाई। इस पर भाई छज्जू जी ने उत्तर दिया कि मैं गुरू अर्जुन देव का सिक्ख हूँ, इसलिए कभी भी झूठा व्यापार, धोखा, बेइमानी इत्यादि नहीं करता क्योंकि मैं सदैव अपने गुरू को साक्षी मानता हूँ। परन्तु यह थैली मेरे ध्यान से उतर गई थी, इसमें मेरा कोई छल-कपट नहीं था। अत: मुझे क्षमा किया जाये। अदालत ने भाई जी को क्षमा दे दी। परन्तु पठान सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने छज्जू शाह जी से पूछा कि मैं सच्चा था, तब भी गर्म तेल का भय सामने देखकर भाग गया जबकि तुम झुठे थे, तुम्हें डर क्यों नहीं लगा ? तुम में इतना आत्म विश्वास कहाँ से आ गया। इस पर भाई जी ने कहा - मुझे अपने गुरू पर पूर्ण भरोसा है। मैं उन्हीं का आश्रय लेकर प्रत्येक कार्य करता हूँ। पठान की जिज्ञासा और भी बढ़ गई, वह चाहने लगा कि मैं उस पीर-मुर्शद के दीदार करना चाहता हूँ, जिसके शर्गिदों में इतनी आस्था है कि वह विचलित नहीं हाते। भाई छज्जू जी पठान के आग्रह पर उसे अमृतसर लेकर गुरू दरबार में उपस्थित हए। उन्होंने गुरू दरबार में समस्त संगत के समक्ष अपनी व्यथा सुनाई। उत्तर में गुरूदेव ने पठान के संशय का समाधान करते हुए कहा - जो व्यक्ति स्वयँ को अपने इष्ट को समर्पित कर देते हैं और चिंतन मनन में लीन रहते हैं, उनमें उनकी आराधना आत्मविश्वास उत्पन्न कर देती है, जिससे वह कभी भी डगमगाते नहीं। इसके विपरीत जो व्यक्ति स्वयँ को इष्ट को समर्पित नहीं होता और सिमरण भजन में मन नहीं लगाते, वह स्थान स्थान पर डगमगाते हैं।

एक माता की प्रेमपूर्वक भेंट

श्री गुरू राम दास जी द्वारा मसंद (मिशनरी) प्रथा बहुत सफलतापूर्वक चल रही थी। ऊँचे आचरण वाले मसंद स्थान स्थान पर जा कर साधारण जिज्ञासुओं को गुरमति सिद्धान्तों को अपने समागमों द्वारा समझाते थे और सिक्खी का प्रचार करते थे। श्रद्धालू लोग उन्हें गुरूदेव जी का प्रतिनिध जानकर अपनी आय का दशमात्र गुरू घर के कार्यो के लिए देते थे। यह लोग प्रत्येक भक्तजन की दी हुई भेंट बहुत संजो कर सुरक्षित रूप में गुरू जी के दरबार में पहुँचा देते थे। एक बार एक मसंद प्रचार दौरे पर था कि उसने एक विशेष ग्राम में गुहार लगाई कि वह गुरूदेव जी के पास वापिस लौट रहा है। अत: आप लोग अपना अपना यथाशक्ति योगदान गुरू घर के नव-निर्माण में डालें। एक ग्राम सिक्खों का था। सभी ने कुछ न कुछ गुरू कोष के लिए दिया। वहाँ एक वृद्धा माता भी अकेली रहती थी। उसके पास गुरूदेव जी के कोष में डालने को कुछ भी न था किन्तु उस के हृदय में इच्छा थी कि मैं भी कुछ अंश भेंट रूप में दूँ। वह माता कल्पना कर ही रही थी कि वह मसंद (मिशनरी) गुहार लगाता हुआ हाज़िर हुआ और बोला - माता जी कुछ गुरू दरबार में भेजना हो तो भेज दें। माता जी के पास कुछ था ही नहीं, वह उस समय अपने आंगन में झाड़ू लगा रही थी। जब इकट्ठा किया हुआ कूड़ा बाहर फैंकने लगी तो तभी मसंद सिक्ख ने सहजभाव से अपनी झोली आके कर दी। वह कूड़ा उसने बहुत प्रेमपूर्वक श्रद्धा से दी गई भेंट मान कर एक पोटली में बाँध लिया। इस पर माता जी को भूल का अहसास हुआ,

उसके नेत्रों से विरह के आँसू छलक पड़े, किन्तु मसंद जी तो जा चुके थे।

श्री गुरु अर्जुनदेव जी के दरबार में यह मसंद सभी श्रद्धालुओं की भेंट लेकर उपस्थित हुए और सभी भेंट गुरूदेव जी के कोषाध्यक्ष को सौंप दी किन्तु गुरूदेव जी ने उसे विशेष रूप से बुलाकर पूछा कि मसंद जी – आपने सभी भेंट जमा करवा दी है, कोई रह तो नहीं गई। मसंद जी ने उत्तर दिया – जी हाँ, मैंने ऐसा ही किया है। गुरूदेव जी ने उसे पुनः सतर्क करते हुए कहा कि देखो, कोई भेंट रह तो नहीं गई। मसंद जी ने सोच कर कहा – हाँ गुरूदेव जी ! मैंने सभी वस्तुओं का हिसाब दे दिया है। इस पर गुरूदेव जी ने उसे कहा कि वह पोटली कहाँ है, जो एक माता जी ने विशेष रूप से हमारे लिए दी है। तब मसंद जी को याद आया कि एक माता जी ने सफाई करते समय कूड़ा ही दिया था। वह कूड़ा ले आये। गुरूदेव जी ने उसे छांटने का आदेश दिया, उस कूड़े में से एक बेरी की गुठली निकली, जिसे गुरूदेव जी प्रेम भेंट मानकर दर्शनी ड्योढ़ी को एक छोर पर बीज दिया, जो कि समय पा कर एक वृक्ष का रूप धारण कर दिया।

गुरू अर्जुन देव जी की प्रचार यात्राएं

श्री गुरू अर्जुन देव जी को उनके श्रद्धालुजन लम्बे समय से अपने अपने क्षेत्र में आमन्त्रित कर रहे थे। उनमें गुरू घर के मसंद (मिशनरी) लोग भी थे। गुरूदेव जी अमृतसर नगर में श्री हरि मन्दिर के निर्माण कार्यो में व्यस्त थे। अतः समय के अभाव के कारण आप चाहते हुए भी गुरूमति प्रचार यात्रा पर न जा सके। अब जब कि श्री हरिमन्दिर (दरबार साहब) के भव्य भवन का कार्य सम्पूर्ण हो चुका था तो आपने सन् 1590 ईस्वी के लगभग पड़ोसी क्षेत्र मांझा व दोआबा में प्रचार करने का मन बनाया। इसके पीछे कारण यह भी था कि जनसाधारण प्रभु भक्ति त्याग कर रूढ़िवादी विचारों के अन्तर्गत कब्रिस्तानों में बने पीरों के मकबरे इत्यादि की पूजा करने लगे थे। इसके अतिरिक्त समाज में जाति प्रथा को आधार बना कर निम्न श्रेणियों का दमन व शोषण जोरों पर था। जबकि आप मानव समाज को एकता के सूत्र में बाँध कर उनका कल्याण करना चाहते थे। आप का दृढ़ विश्वास था कि समाज में अधिकांश दुखों का कारण समाज का वर्गीकरण है।

आप सर्वप्रथम जंयाला कस्बे में पहुँचे। वहाँ पर आपका भाई हिंदाल जी ने हार्दिक स्वागत किया। हिंदाल जी इन दिनों वृद्धावस्था में थे। आप जी ने बहुत लम्बे समय तक श्री गुरू अमर दास जी के पास गोईदवाल तथा उसके पश्चात् श्री गुरू राम दास जी के पास अमृतसर लंगर तैयार करने की सेवा की थी। आपको श्री गुरू रामदास जी ने आशीष देकर सम्मानित किया था और उसके पश्चात् मसंद (मिशनरी) उपाधि देकर प्रचार हेतु उन्हीं के क्षेत्र में भेज दिया था। गुरू देव जी ने उनकी प्रचार सेवाओं पर प्रसन्नता व्यक्त की और उनको केवल एक परब्रह्म परमेश्वर (अकाल पुरूष) की उपासना पर बल देने को कहा और समझाया कि आप का एकमात्र लक्ष्य लोगों को कब्रिस्तानों और मूर्ति पूजा से हटाना है ताकि समाज में एकता आ जाये।

आप कुछ ही दिनों में प्रचार करते हुए खडूर नगर पहुँचे। वहाँ गुरूदेव जी की अगवानी करने श्री गुरू अंगद देव जी के पुत्र दातु जी व दासु जी आये और वे आपको अपने यहाँ ले गये। गुरूदेव का उन्होंने भव्य स्वागत किया। श्री दातु जी ने विनम्र भाव से आप से विनती की कि उन्हें क्षमादान दिया जाये क्योंकि युवावस्था में उन्होंने बहकावे में आकर तीसरे गुरू श्री गुरू अमरदास जी को लात मार दी थी और उनके डेरे का सामान बांध कर वापिस खडूर लौटते समय रास्ते में डाकुओं द्वारा सामान छीन लेने पर, छीना झपटी में एक लट्ठ डाकुओं ने दातू जी को दे मारा था, जिसकी पीड़ा उस लात पर अभी भी रूकी हुई है। गुरूदेव जी ने उनकी पश्चाताप भरी विनती स्वीकार करते हुए, उनकी लात की मालिश अपने हाथों से कर दी। जिससे उनके मन का बोझ हल्का हो गया और धीरे धीरे पीड़ा हट गई।

श्री गुरू अर्जुन देव जी दातू व दासू जी से विदाई लेकर गोईदवाल पहुँचे। वहाँ आपका ननिहाल था और आप का बाल्यकाल यहीं मामा मोहन जी तथा मोहरी जी की छत्र-छाया में व्यतीत हुआ था। वे आपसे बहुत स्नेह करते थे। अतः आपजी कुछ दिन उनके प्यार के बंधे वहीं ठहरे रहे। तद्पश्चात आप आगे बढ़ते हुए गाँव सरहाली पहुँचे। उस समय मध्यान्तर का समय था। भोजन की व्यवस्था के लिए स्थानीय निवासियों ने ताजे उबले हुए चावलों पर घी-शक्कर डाल कर आपके समक्ष प्रस्तुत किये। आपने प्रेम से प्रस्तुत भोजन की बहुत प्रशंसा की, जिस कारण उस ग्राम का नाम चोला साहब पड़ गया। आप जी ने श्रद्धालुओं को केवल एक निराकार प्रभु पर आस्था रखने पर बल दिया और शब्द उच्चारण किया –

हरि धनि संचन, हरिनाम भोजन, एह नानक कीनो चोलाः।

गुरूदेव आगे बढ़ते हुए खानपुर क्षेत्र में पहुँचे। यहाँ की अधिकांश जनता सखी सरवरों के अनुयायी थे। उन्होंने गुरूदेव जी का कड़ा विरोध किया। कुछ समृद्ध किसानों ने गुरूदेव जी को अपमान भरे शब्द भी कहे, किन्तु गुरूदेव जी शान्तचित्त व अडोल रहे। इस पर सिक्खों ने कहा – गुरू जी ! हमें लौट जाना चाहिए, जहाँ सतकार न मिले, वहाँ उन के भले के लिए जाने के लिए आप को क्या पड़ी है? उत्तर में गुरूदेव ने सभी को सांत्वना दी और कहा – वस्तव में हमारा कार्यक्षेत्र यही है, यहीं सब से अधिक गुरमति के प्रचार प्रसार की आवश्यकता है। आप का निर्णय सुनकर सभी स्तब्ध रह गये। इन कठिन परिस्थितियों में एक स्थानीय खेतीहर मजदूर 'हेमा' आप के सम्मुख उपस्थित हुआ और प्रार्थना करने लगा – हे गुरूदेव ! कृपया, आप मेरे यहाँ विश्राम के लिए चलें। गुरूदेव जी ने उसका अनुरोध स्वीकार किया और उस की झोंपड़ी

में चले गये। उस श्रद्धालु सिक्ख ने गुरूदेव जी और संगत की यथाशक्ति खूब सेवा की। गुरूदेव जी उस गरीब हेमा जी की सेवा देखकर रीझ उठे और स्नेहवश उच्चारण करने लगे-

भली सुहावी छापरी जा महि गुन गाए।
कित ही कामि न धउल हरि जित हरि विसराए। रहाउ।
अनद गरीबी साध संगि जित प्रभ चिति आए।
जलि जाउ एहु बडपना माइआ लपटाए। *महला 5 वां पृष्ठ ....*

गाँव खानपुर का पड़ौसी 'खारा' गाँव था। यह गाँव प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर दृश्य प्रस्तुत करता देख गुरूदेव जी यहीं रूक गये। आपको इस रमणीक स्थल ने ऐसा आकर्षित कियाकि आपने यहाँ एक विशाल प्रचार केन्द्र बनाने की योजना बना डाली। मुख्य कारण, यहाँ के स्थानीय किसानों को कब्रों की पूजा से हटा कर दिव्य ज्योति परब्रह्म परमेश्वर से जोड़ना था। आप अनुभव कर रहे थे कि गुरमति के प्रचार के लिए स्थानीय लोगों के निकट बसना अति आवश्यक है। आपने एक तालाब को केन्द्र मान कर आसपास की भूमि किसानों से मूल्य देकर खरीद ली और तालाब को एक विशाल पक्के सरोवर का स्वरूप देना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही इस सरोवर के एक किनारे एक भव्य भवन का निर्माण भी करवाने लगे, जिस में स्थानीय लोगों को एकत्रित कर प्रतिदिन सत्संग किया जा सके। निर्माण के कार्य में श्रमदान करने के लिए दूर-दराज से संगत आने लगी। संगत की भारी भीड़ को सभी प्रकार की सुविएं प्रदान करने के लिए एक छोटे से नगर की आधारशिला भी रखी जिसका नाम तरन-तारन रखा। देखते ही देखते गुरूदेव जी के आदेश पर उनके अनुयाइयों ने वर्ष का कार्य महीनों में ही समाप्त कर दिया। इस बीच स्थानीय जाट किसानों ने भी गुरू की महिमा आँखों देखी, वे भी गुरूदेव जी के धीरे धीरे निकटता उत्पन्न करने लगे। गुरूदेव जी जब भी दरबार सजाते, उसमें केवल एक हरि नाम की ही चर्चा करते और वह अपने प्रवचनों में प्राय: एक बात पर बल देते - हे सत्य पुरूषों ! हमें अपने श्वासों की पूंजी व्यर्थ नहीं खोनी चाहिए, यही वह समय है, जिस के सदुपयोग से हम यह मानव जन्म सफल कर सकते हैं।

भई परापति मानुस देहुरीआ।
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।
अवरि काज तेरै कितै न काम।
मिलु साधु संगति भजु केवल नाम।
सरंजामि लागु भवजल तरन कै।
जनमु बिरथा जात रंगि माइआ कै। रहाउ ।

राग आसा, महला 5 वां, पृष्ठ-378

गुरूदेव की युक्ति सफल सिद्ध हुई। बहुत से बड़े किसान जो कब्रों की पूजा करते थे, वह धीरे-धीरे गुरूदेव जी के प्रवचनों के माध्यम से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सभी प्रकार के व्यर्थ कर्म त्याग दिये और केवल हरि नाम का यश करने लगे।

प्रथम कुष्ट आश्रम

एक दिन श्री गुरू अर्जुन देव जी प्रात:काल (अमृत बेला) में मधुर स्वर में गुरूवाणी उच्चारण करते हुए सैर कर रहे थे, तभी उनके कानों में किसी करूणामय स्वर की आवाज सुनाई दी, वह व्यक्ति दर्द से चिल्ला रहा था। गुरूदेव जी ने एक सेवक को पता लगाने के लिए भेजा। सेवक ने बताया कि एक वृद्ध व्यक्ति कुष्ट रोग से पीड़ित है, उसके लड़कों ने उसका बहुत उपचार किया है किन्तु यह रोग असाध्य है। अत: दुर्गन्ध व संक्रामण (बदबू और छूत) के कारण लोग उसे गाँव से दूर व्यास नदी के तट पर छोड़ देना चाहते हैं। यह करूणामय वृतान्त सुनकर गुरूदेव जी का हृदय दया से भर गया। उन्होंने तुरन्त आदेश दिया कि इस रोगी को सुबह हमारे पास लेकर आयें। ऐसा ही किया गया। गुरूदेव ने कुष्ट रोग से प्रभावित व्यक्ति हेतु कौन सा से कुछ दूर हट कर एक आश्रम निर्माण का आदेश दिया और वहीं आप उस रोगी का स्वयँ उपचार करने लगे। आपने कुछ विशेष रसायन पानी में मिला कर उन्हें उबाल कर, गुनगुने पानी से व्यक्ति के घावों को धो डाला और उन घावों पर मरहम लगा कर पट्टी कर दी, जिससे रोगी से बदबू हट गई और उसे दर्द से राहत मिली। इसके साथ ही आपने कुछ आयुर्वेदिक औषधियाँ रोगी को सेवन करने के लिए दी, परिणामस्वरूप कुष्ट रोगी कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त हुआ और वह गुरूदेव जी का धन्यवाद करने लगा। जैसे ही इस घटना का लोगों को मालूम हुआ, दूर-दूर से कुष्ट रोगी तरन-तारन पहुँचने लगे। गुरूदेव जी ने उनके लिए विशेष रूप से कुष्ट आश्रम बनवा दिया, ताकि समाज में इन लोगों का बहिष्कार करके दुत्कारा न जाए और सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं कुष्ट रोगियों के लिए उपलब्ध करवा दी।

बाबा बुड्ढा जी के जन्म स्थल पर गुरूदेव जी का आगमन

श्री गुरू अर्जुन देव जी को एक दिन बाबा बुड्ढा जी ने अनुरोध किया कि वह हमारे पूर्वजों के निवास स्थल पर अवश्य ही चलें। वहाँ की स्थानीय संगत आपके दर्शन-दीदार की अभिलाषा रखती है। गुरूदेव जी ने बाबा बुड्ढा जी का आग्रह तुरन्त स्वीकार कर लिया और बाबा

जी के पुश्तैनी ग्राम रामदास पहुँचे। वहाँ की संगत ने आप का भव्य स्वागत किया और आपसे सहज जीवन जीने की युक्ति पूछी? इस पर गुरूदेव जी ने उत्तर में यह पद्य उच्चारण किया -

सुख सहज आनंद, घणा हरि कीरतनु गाउ।
गरह निवारे सतिगुरू के आपणा नाउ।

गुरूदेव जी ने कहा - यदि आप गृह कलह-क्लेश से मुक्ति चाहते हैं तो उसका सहज सरल उपाय यही है कि हरि नाम का सुमरिन करें अथवा हरियश में संलग्न हो, प्रभु की स्तुति में कीर्तन करें। सभी प्रकार के आनन्द स्वयँ ही प्राप्त होते चले जायेंगे।

एक सिक्ख ने अपनी समस्या बताते हुए कहा - हे गुरूदेव ! यहाँ के स्थानीय पण्डित हमें बताते हैं कि सभी प्रकार की सुख शान्ति ग्रह-नक्षत्रों के प्रभाव पर निर्भर करती है।

गुरूदेव जी ने समस्त संगत को सम्बोधन करके कहा - हमें श्री गुरू नानक देव जी के सर्वोतम दान 'नाम दान' का अद्विितीय उपहार दिया है। यह नाम रूपी धन महाशक्ति है, जिसके आगे शकुन-अपशकुन ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव नगण्य हो जाता है।

सगन अपसगन तिस कउ लगहि जिस चीत न आवै।
तिस जम नेड़ि न आवई जो हरि प्रभु भावै।
पुन्न दान जप तप जेते, सभ ऊपरि नामु।
हरि हरि रसना जो जपै तिस पूरन कामु। *आसा महता 5वां पृष्ठ.......................*

करतारपुर नगर का निर्माण

जैसे जैसे गाँव देहातों में यह सूचना पहुँचती कि श्री गुरू अर्जुन देव जी प्रचार दौरे पर हैं तो आसपास के क्षेत्रों की संगत एकत्रित होकर गुरूदेव के समक्ष विनती करने पहुँचती, उन सभी का आग्रह यही होता कि कृपया आप हमारे क्षेत्र के निवासियों के उद्धार हेतु हमारे गाँव पधारें। गुरूदेव सभी को सांत्वना देते और कहते - हम धीरे धीरे आप सभी की अभिलाषा के अनुसार दुआबा क्षेत्र में विचरण करने वाले हैं। इस प्रकार भाई कालू, चाऊ, बमियाँ के अनुरोध पर आप जी सुलतानपुर लोधी पहुँचे। इस क्षेत्र में श्री गुरू नानक देव जी मोदी खाने में सरकारी सेवा करते हुए मानव कल्याण हेतु धर्मशाला की स्थापना अपने जीवनकाल में ही कर गये थे, जिसके परिणामस्वरूप आज वहाँ सिक्खी फलीभूत हो रही थी और लोग रूढ़िवादी कर्मकाण्ड त्याग कर एकेश्वर की उपासना में संलग्न थे। गुरूदेव जी यह देख अति प्रसन्न हुए और उन्होंने मन बना लिया कि श्री गुरू नानक देव जी द्वारा दर्शायी गई विधि अनुसार ही प्रत्येक क्षेत्र में धर्मशालाएं बनाई जाएं, जहाँ प्रतिदिन सत्संग हो और जिस में केवल निराकार परब्रह्म परमेश्वर की ही उपासना की विधि पर विशेष बल दिया जाया करे। आप कुछ दिन स्थानीय संगत के बीच प्रवचन करते रहे और आप ने दृढ़ करवा दिया -

सभ महि जानउ करता एक।
साध संगति मिलि बुधि बिबेका। *आसा म. 5 वां पृष्ठ 37 7*

यथा

सत संगति महि बिसासु होइ, हरि जीवत मरसंगारी। आसा म. 5 वां पृष्ठ 1120

श्री गुरू अर्जुनदेव जी को पड़ौसी क्षेत्रों से सन्देश मिलने लगे कि आप जी कृपया हमारे यहाँ भी पदार्पण करें। विशेषकर डल्ला निवासी तो गुरूदेव जी को लेने आ पहुँचे। उनके स्नेह के बँधे श्री गुरूदेव डल्ला क्षेत्र में पधारें। अधिकांश संगत के वृद्ध गण श्री गुरू अमर दास जी से गुरू दीक्षा प्राप्त कर सिक्खी में प्रवेश प्राप्त किये हुए थे। अतः उन्होंने गुरुदेव का भव्य स्वागत किया और अपनी धर्मशाला में गुरुदेव को ठहराया। गुरूदेव जी स्थानीय धर्मशाला और उसके संचालन के कार्य को देखकर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने निर्णय लिया कि इसी प्रकार की धर्मशालाओं का स्थान स्थान निर्माण और विकास किया जाये, जिससे जनसाधारण के लिए प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधाएं उपलब्ध हों ताकि कोई भूखा, प्यासा तथा बीमार न रहे। गुरुदेव जी ने अपने प्रवचनों में पीड़ित प्राणियों की सेवा पर बल दिया और कहा -मानवमात्र की सेवा ही उस प्रभु की सच्ची आराधना है।

मै बधी सचु धरम साल है। गुरसिखा लहदा भालि कै।
पैर धोवा पखा फेरदा, तिसु निवि निवि लगा पाइ जीउ।

गुरूदेव जी को मिलने जहाँ साधारण श्रद्धालु आते थे, वहीं स्थानीय प्रशासकीय अधिकारी भी आते। आपके प्रवचनों का उनके मन पर गहरा प्रभाव देखने को मिता। उनमें से सैय्यद अज़ीम खान भी श्री गुरू चरणों में उपस्थित हुए और उन्होंने गुरूदेव जी से निवेदन किया कि वह दोआबा क्षेत्र में भी कोई विशेष प्रचार केन्द्र की स्थापना करे, जिससे स्थानीय जनता लाभांवित हो सके। गुरूदेव जी ने प्रार्थना स्वीकार की और उसके साथ दोआबा क्षेत्र में विचरण करने लगे। यहीं मध्य दोआबा में गुरुदेव जी को एक रमणीक क्षेत्र भा गया। आपने वह स्थान स्थानीय किसानों से खरीद कर प्रशासन से संगत के नाम पट्टा लिखवा लिया। सैय्यद अज़ीम खान यह स्थान धर्मशाला के नाम देना चाहता था, किन्तु गुरूदेव जी ने वह स्वीकार नहीं किया और उसे समझाते हुए कहा - भूमि इत्यादि समय व्यतीत होने के पश्चात् झगड़ों का कारण बन जाती

है। अत: भला इसी में ही है कि भूमि मूल्य देकर खरीदी जाये। आप जी ने इस क्षेत्र का नाम करतारपुर रखा और बसाना प्रारम्भ किया। कुछ व्यापारियों को नि:शुल्क भूमि देकर व्यापार करने और यहीं बसने के लिए आकर्षित किया। नवम्बर, 1594 ईस्वी में आपने यहाँ एक धर्मशाला की आधारशिला भी रखी। पेय जल की आपूर्ति के लिए एक विशेष कुआं भी खुदवाया। आपके यहाँ पदार्पण की याद को चिरस्थाई बनाने के लिए स्थानीय संगत ने एक पुराने शीशम के वृक्ष के तने का स्तम्भ बनवा कर स्थापित किया। संगत में से कुछ श्रद्धालुओं ने कुएं का नाम माता गँगा जी की याद में गंगसर कर दिया। गुरूदेव ने साध संगत की महिमा दृढ़ करवाते हुए अपने प्रवचनों में कहा

साध संगि मलु लाथी।
पार ब्रह्मु भइओ साथी।
नानक नामु धिआइआ।
आदि पुरख प्रभु पाइआ। *सोरठि, महला 5वां पृष्ठ 625*

यथा

महा पवित्र साध का संगु।
जिसु भेंटत लागै प्रभ रंगु। *आसा, महला 5वां पृष्ठ 89*

श्री गुरूदेव जी ने अपने प्रवचनों में जन-साधारण को बताया कि मानव को अपने कल्याण के लिए साध संगत में अवश्य ही आते रहना चाहिए क्योंकि साध संगत वह स्थान है, जहाँ मानव जीवन को सफल करने की युक्ति मिल जाती है।

गुरूदेव जी अपने मूल लक्ष्य में सफल हुए। जनसाधारण उनको क्रान्तिकारी विचारधारा से बहुत प्रभावित हुए और वे सभी रूढ़िवादी जीवन त्याग कर एकेश्वर की आराधना में व्यस्त रहने लगे। आप जी को अमृतसर से बाहर प्रचार दौरे पर लम्बा समय हो गया था। अत: आपने लौटने का मन बनाया और अमृतसर पहुँचे।

भाई बिधि चंद जी

एक कुख्यात चोर एक बार अर्ध-रात्री को एक गांव से वहां के किसानों की कुछ भैंसे, मवेशी घरों से खोलकर हांकता हुआ किसी अज्ञात स्थान पर उन्हें बेचने के विचार से ले उड़ा। जब भोर हुई तो किसानों ने पाया कि उनके मवेशी चोरी हो गये है। वे तुरन्त एकत्र हुए ओर हाथ में लाठियां लिये चोर की तलाश मे निकल पड़े। वे भैंसों तथा चोर के पद-चिन्हों को आधार मान कर आगे बढ़ते चले आ रहे थे। जल्दी की चोर को ऐहसास हो गया कि मैं अब किसानों की पकड़ मे आने वाला हूं। उसने तुरन्त समस्त भैसों को एक तलाब में हांक दिया और स्वयं वहां से भागकर निकट की धर्मशाला में शरण ली। इस समय वहां हरियश हो रहा था और भक्तगण श्री गुरू अरजन देव जी के प्रवचन सुन रहे थे। (आप जी इन दिनों मानव कल्याण हेतु भ्रमण करते हुए जिला जालंधर के एक गांव में पधारे हुए थे। जिस के विकास में आपने बहुत कुछ कार्य किये और वहां एक नये नगर की अधार शिला रखी, जिस का नाम करतार पुर प्रसिद्ध हुआ।

उस समय आप जी ने कहा :-

चोर की हामा भरे ना कोई।।

चोरु कीआ चंगा किउ होइ।।

धनासरी, महला पहला, पृष्ठ 662

आपने अपने प्रवचनों में कहा - मनुष्यों को अपनी जीविका विवेक बुद्धि से अर्जित करनी चाहिए जो भी व्यक्ति अधर्म के कार्य करके अपना अथवा अपने परिवार का पोषण करता है वह समाज में आदर का स्थान नहीं प्राप्त कर सकता। आज नहीं तो कल कभी न कभी ऐसा समय आता है जब रहस्य खुल जाता है और उस व्यक्ति को अपमानित होना पड़ता हैं। यह तो हैं इस संसार की बातें किन्तु आध्यात्मिक दुनियां में ऐसे व्यक्ति अपराधी होने के कारण पश्चात्ताप में जलते है और उनका स्थान गौण हो जाता है।

जब चोर ने यह प्रवचन सुने तो उसको आपने किये पर बहुत प्रायश्चित हुआ। अब वह मन ही मन प्रार्थना करने लगा कि हे गुरूदेव! यदि मुझे इस भयंकर भूल से मुक्ति दिलवा दे, तो मैं शपत लेता हूं कि फिर कभी चोरी नहीं करूगां। चोर अराधना में खो गया। उस का कठोर हृदय संगत के प्रभाव से क्षण भर में पिघल कर मोम हो गया और नेत्रों में आसूं धारा प्रवाहित होने लगी। जब उसके अतं:करण की शुद्धि हुई तभी उस पर गुरू कृपा हुई और उसकी काया कल्प हो गयी। वह चोर से साधु बन गया। इतने में किसानों का वह समुह चोर के पद चिन्हों के सहारे गुरू दरबार में पहुंच गये। उन्होंने गुरूदेव को चोर के वहां पहुचने की सूचना दी। इस पर गुरूदेव ने उनसे कहा - आप को अपना माल-डँगर मिल गया है क्या? किसानों ने उत्तर दिया, हजूर! वह तो पास के तालाब में है। गुरूदेव ने उन्हें परामर्श दिया जाओ पहले अपने माल को जाँच परख लो। वह गुरूदेव का आदेश मानकर तलाब पर पहुँचे और बहुत चकित हुए वहां पर उनकी भैंसे नहीं थी बल्कि कोई अन्य भूरे रंग की भैंसे थी जब कि इनकी भैंसो का रंग काला था। वे सभी अपना सा मुंह लेकर लोट गये।

किसानों के लोट जाने पर गुरूदेव ने चोर को अपने पास बुलाया। यह चोर जिसका नाम बिधिचंद था संगत में दुबका हुआ आँखें मीचे बैठा था। गुरूदेव के सम्मुख होते ही बिधि चंद ने उनके चरणों पर शीश धर दिया और क्षमा याचना करने लगा। गुरूदेव ने उसे कहा - क्षमा

तो तभी मिलेगी जब तुम इन भैसों को उसी प्रकार लोटा दोगे, जिस प्रकार लाये थे और आइंदा से इन कुकर्मो से तोबा करोगे। बिधिचंद ने अश्वासन दिया कि वह आप के सभी आदेशें का पूर्ण निष्ठा से पालन करेगा और कभी अपराधी जीवन नहीं व्यतीत करेंगा।

इस घटना के पश्चात भाई विधि चंद जी श्री गुरू अरजन देव जी की सेवा में उनके अनन्य सिख के रूप में रहने लगे।

ननकाना साहब के दर्शन

श्री गुरू अर्जुन देव जी ने अनुभव किया कि ऋतु बदलने के साथ लाहौर निवासियों की हालत में बहुत सुधार हुआ है। प्रकृति ने भी वर्षा इत्यादि का उपहार देकर जनसाधारण को राहत पहुँचाई थी। अत: आप जी ने मन बनाया क गुरू नानक देव जी के प्रकाश स्थान ननकाना साहब के दर्शन कर लिये जाने चाहिए। आप जिला शेखुपुरा पहुँचें। वहाँ से गाँव राय भोएकी तलवंडी पहुँचे। वहाँ आपने पाया कि स्थानीय श्रद्धालुओं ने श्री गुरू नानक देव जी के जन्म स्थान वाले श्री मेहता कल्याण चन्द जी के भवन को धर्मशाला का रूप दिया हुआ है और वहाँ समय समय पर बहुत संगतें एकत्रित होती हैं। आप जी ने स्थानीय सगत से विचार विमर्श करके उस धर्मशाला का आधुनिकीकरण करने की योजना बनाई। संगत के सहयोग से कार्य तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ। गुरूदेव जी के वहाँ रहते मूल ढांचा तैयार हो गया। गुरूदेव प्रतिदिन संगत को अपने प्रवचनों से कृतार्थ करते। अड़ोस-पड़ौस के क्षेत्रों की संगत का ननकाना साहब में खूब जमावड़ा हो गया। बहुत से श्रद्धालु आप से विनम्र निवेदन करने लगेकि आप उनके देहातों में भी पधारें, जिस से स्थानीय लोग जो कि दकियानूसी परम्पराओं में ग्रस्त हैं और अपना शोषण करवा रहे हैं। उनको भी सहज जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन मिल सके। गुरूदेव जी ने सब को धीरज बधाया और कहा - प्रभु इच्छा हुई तो मेरा प्रयास यही रहेगा कि अधिक से अधिक क्षेत्रों मे भ्रमण हो सके। भाई गुंदारा जी अपने गांव की पंचायत लेकर आपके समक्ष उपस्थित हुए। गाँव मदर की पंचायत का अनुरोध इतना भावपूर्ण था कि गुरूदेव जी उनके आग्रह को नहीं टाल सके और आप जी संगत के साथ मदर गाँव पहुँच गये। स्थानीय जनता ने आप का भव्य स्वागत किया। आपके प्रवचनों के लिए आप को एक मंच पर स्थान दिया गया।

गुरूदेव जी ने समस्त जिज्ञासुओं को सम्बोधन करते हुए कहा - हमारा मूल लक्ष्य इस मानव चोले (शरीर) को सफल करना है। इसके लिए हमारे पास एक सर्वश्रेष्ठ युक्ति है कि हम सभी घर-गृहस्थ में रहते हुए केवल अपने मन को प्रभु चरणों में जोड़े रखें अर्थात हमें अपनी सुरती सदैव निराकार परब्रह्म परमेश्वर के संग जोड़े रहना है और समस्त गृहस्थ के कार्य निर्विघ्न करते रहना है। इसके लिए हमें किसी भी प्रकार का आडम्बर रचने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी और आपने फरमाया -

नानक सतिगुरि भेटिऐ, पूरी होवै जुगति।
हसंदिआ, खेलदिआ, पैनंदिआ, खावंदिआ, विचे होवै मुकति।

वार गुजारी, महला 5वां पृष्ठ 522

यथा

उदमु करेदिआ जीउ तूं, कमावदिआ सुख भुंचु।
धिआइदिआ तूं प्रभु मिलु, नानक उतरी चिंत।

वार गूजरी, महला 5 वां पृष्ठ 523

आप जी द्वारा दर्शाया गया जीवन मुक्ति मार्ग सहज था इसलिए सभी वर्गो के श्रोताओं के मन को भा गया क्योंकि आम समाज में इस के विपरीत मान्यताएं प्रचलित थी कि साँसारिक कार-व्यवहार में मन प्रभु चरणों में स्थिर हो नहीं सकता।

भाई गुंदारा जी बहुत ऊँची आत्मिक अवस्था वाले व्यक्ति थे। उन्होंने गुरूदेव जी के अतिथि सत्कार में कोई कोर-कसर नहीं रहने दी। उनके गले पर हजीर रोग के कारण गाँठें बनी हुई थी। उन्हें इस रोग के कारण दर्द भी रहता था किन्तु वह निष्काम सेवा भाव में जुटे रहते थे। उनके परिवार के सदस्यों ने उन से कहा - आप गुरूदेव से देह अरोग्य होने के लिए याचना करे। किन्तु भाई जी बहुत त्यागी किस्म के व्यक्ति थे। उनका मानना था कि इस देह के लिए स्वस्थ होने की याचना क्यों करूँ जब कि मैं जानता हूँ कि यह नश्वर है। यदि मैंने गुरूदेव जी से कुछ याचना की भी तो आध्यात्मिक दुनियां की कोई अनमोल वस्तु की चाहना करेंगे, जिस की प्राप्ति पर फिर आवागमन का चक्र समाप्त हो जाए अथवा फिर पुन: जन्म न हो। गुरूदेव जी ने उनका रोग भी देखा और निष्काम सेवा भक्ति भाव भी, अत: उन्होंने अपने प्रिय शिष्य के लोक-परलोक दोनों सँवार दिये। भाई जी का हजीर रोग भी ठीक हो गया।

श्री गुरूदेव जी को जम्बर गांव की संगत अपने यहाँ ले गई। वहाँ के नागरिकों की समस्याएं देखकर वहाँ आप जी ने एक नि:शल्क दवाखाना की आधारशिला रखी। वहाँ पर पेयजल की भी बहुत कमी थी, स्थानीय कुओं का जल खारा था। अत: आपने एक विशेष स्थान चुनकर समस्त संगत के साथ मिलकर प्रभु चरणों में प्रार्थना की और नया कुआं खुदवाना प्रारम्भ किया। प्रभु कृपा से इस नये कुएं का जल मीठा निकला, जिस से स्थानीय लोगों की साध पूर्ण हो गई। इसी गाँव में एक साहूकार रहता था, इसे कूकर्मो के कारण कुष्ठ रोग हो गया था। उस साहूकार संतू के परिजन आप के समक्ष प्रार्थना लेकर उपस्थित हुए कि कृपया आप संतू शाह के रोग का निवारण करें। गुरूदेव जी ने सब को सांत्वना दी और कहा - उसे हमारे द्वारा बनाये गए कुष्ठ रोगी आश्रम, तरन-तारन ले जाएं वहीं इसकी उचित देखभाल तथा उपचार ठीक रहेगा।

जैसे ही समाचार फैला कि जम्बर गाँव वालों को मीठे जल का स्रोत मिल गया है तो पड़ौसी गांव चूणिया के निवासी भी बहुत बड़ी आशा लेकर गुरू दरबार में हाजिर हुए और विनती करने लगे, हे गुरूदेव ! हमारा भी कष्ट निवारण करें। हमारे गाँवं में भी पेय जल की सदैव कमी बनी रहती है। दयालु दया के सागर गुरूदेव उन पीड़ितों को राहत देने उनके गाँव पहुँचे।

श्री गुरू अरजन देव जी के गृह में बालक हरि गोबिन्द जी का प्रकाश (जन्म)

श्री गुरू अरजन देव जी बहुत उदार तथा विशाल हृदय के स्वामी थे वह सदैव समस्त मानवता के प्रति स्नेह की भावना से ओत-प्रोत रहते थे। अतः उनके हृदय में कभी भी किसी के प्रति मन-मुटाव नहीं रहा। इस लिए उन्होंने अपने बड़े भाईयों को उन की मांग से भी कहीं अधिक दे दिया था और उनको सन्तुष्ट करने का पूर्ण प्रयास किया था। किन्तु बड़े भैया-भाभी उनकी मान्यता और प्रसिद्धि के कारण ईर्ष्या करते रहते थे। तब भी श्री गुरू अरजन देव जी संयुक्त परिवार के रूप में ही रहना हितकर समझते थे। संयुक्त परिवार मे केवल बालक मेहरवान ही सभी की आंखो का तारा था अतः उसे गुरूदेव बहुत प्यार करते थे और वह भी अपने चाचे बिना रह नहीं पाता था प्यार दोनों ओर से था ऐसे ही समय व्यतीत हो रहा था कि एक दिन अफगानिस्तान की संगत गुरूदेव के दर्शनों को आई उन लोगों ने कुछ बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण परिजनों के लिए भेंट किये। सेवकों ने गुरूदेव की पत्नी (माता) गंगा जी को सौंप दिये। इन मे कुछ गर्मवस्त्र पश्मीने के भी थे जिन्हें देखकर दासियां आश्चर्य-चकित रह गई। एक दासी ने इन कीमती सामग्री का विवरण उनकी जेठानी श्री मति क्रमों देवी को दे दिया। उसे हीन भावना सताने लगी और वह सोचने लगी काश मेरे पति को गुरू गद्दी प्राप्त होती तो यह उपहार आज उसे प्राप्त होते। वह इसी उलझन में थी कि उसी समय उसके पति पृथी चंद जी घर लोट आये। उन्होंने पत्नि को उदास देखा तो प्रश्न किया-क्या बात है, बड़ा मुँह लटकाये बैठी हो? इस पर कर्मो देवी ने उत्तर दिया - हमारे भाग्य कहां जो मैं भी सुख देखु? व्यंग सुनकर पृथीचंद बोला आखिर माजरा क्या है? उत्तर में कर्मो ने रहस्य उद्घाटन करते हुए कटाक्ष किया और कहा काश यदि तुम गुरू पदवी को प्राप्त कर लेते तो आज समस्त कीमती उपहार उसे प्राप्त होते। इस पर पृथी चंद ने उसे सांत्वना देते हुए कहा - तू चिन्ता न कर मैं गुरू न बन सका तो कोई बात नहीं इस बार तेरा बेटा मेहरबान गुरू बनेगा और यह सभी सामग्री लोट कर तेरे पास आ जायेगी। तभी कर्मो न पूछा वह कैसे?

उत्तर में पृथी चंद ने बताया। अरजन के सन्तान तो है नहीं वह तेरे लड़के को ही अपना बेटा मानता है, वैसे भी उनके विवाह को लगभग 15 वर्ष हो चुके है अब सन्तान होने की आशा भी नहीं है क्योंकि तेरी देवरानी बांझ है। इस बात को सुनकर कर्मो सन्तुष्ट हो गई किन्तु बाँझ वाली बात एक दासी ने सुन ली थी। उसने माता गँगा जी को चुगली कर दी और कहा - आपके प्रति दुर्भावना रखते हैं, आप के जेठ जी। वह कह रहे थे कि आप ओतरी (नपूती) हैं। दासी के मुख से यह व्यंग बाण सुनकर माता जी छटपटा उठी और वह व्याकुल होकर गुरूदेव जी के घर लौटने की प्रतीक्षा करने लगी। जैसे ही गुरूदेव दोपहर के भोजन के लिए घर पहुँचे तो श्रीमती गँगा जी ने उनसे बहुत विनम्र भाव से निवेदन किया और कहा कि आप श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी हैं, अतः समर्थ हैं। आप सभी याचिकों की झोलियाँ भर देते हैं। कभी किसी को निराश नहीं लौटाते। आज मैं भी आपके पास एक भिक्षा माँग रही हूँ कि एक पुत्र का दान दीजिए। मेरी भी सूनी गोद हरी-भरी होनी चाहिए। गुरूदेव ने परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए गँगा जी को धीरज बंधाया और कहा - आप की याचना उचित है, प्रभु कृपा से वह भी पूर्ण होगी। किन्तु आपको उनके लिए कुछ उद्यम करना होगा। आप तो जानती ही हैं कि इस समय श्री गुरू नानक देव जी के परम सेवक बाबा बुड्ढा जी हमारे बीच हैं, आप उन महान विभूति (बुर्जुग) के पास अपनी याचिका लेकर जाओ। मुझे आशा है कि आपकी अभिलाषा वहीं से पूर्ण होगी।

गुरू पत्नि श्रीमती गंगा वी जी को युक्ति मिल गई। वह अपनी सखियों से इस विषय में विचार-विमर्श करने लगी। सभी ने मिलकर एक कार्यक्रम बनाया और उसके अन्तर्गत एक दिन खूब स्वादिष्ट पकवान तैयार करके, एक रथ पर सवार होकर, वह सभी मंगलमय गीत गाती हुई बाबा बुड्ढा जी के निवास स्थान झवाल गाँव पहुँचे। उन दिनों इस स्थान को बाबे बुड्ढे की बीड़ कहा जाता था। जब यह रथ खेतों के निकट से गुजरा तो उसमें स्त्रियों के गीत गाने का मधुर स्वर बाबा जी को सुनाई दिया, वह सतर्क हुए। उस समय वह खेतों का कार्य समाप्त कर मध्यान्तर के भोजन की प्रतीक्षा में एक वृक्ष के नीचे विश्राम मुद्रा में बैठे थे। उनको कोतूहल हुआ कि इस शान्त वातावरण में इस समय यहाँ कौन आया है? उन्होंने सेवक से पूछा - देखकर आओ कि कौन हैं? सेवक रथ के पास गया और सभी प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त कर बाबा जी के समक्ष पहुँचा और उसने बताया कि श्री गुरू अर्जुन देव जी के महल से उनकी पत्नी आपके दर्शनों को आये हैं, पुत्र कामना लेकर। इस पर बाबा बुड्ढा जी ने कहा - गुरूदेव जी तो स्वयं समर्थ हैं, माता जी को सेवक के दर पर भटकने की क्या आवश्यकता पड़ गई। बाबा जी उसी क्षण उठे और अगवानी करने पहुँचे, माता गंगा जी का सामना होते ही उन्होंने झुककर प्रणाम किया और हार्दिक स्वागत करते हुए उन्हें अपने आश्रम में ले गये। वहाँ उन्होंने माता जी से कुशल क्षेम पूछी और कहा - आज आपने इस दास के यहाँ आने का कष्ट क्यों किया। मुझे आज्ञा भेजे देते, मैं स्वयँ हाजिर हो जाता। यह वाक्य सुनकर माता जी शांत होकर विचारों में खो गई, उनको एहसास होने लगा कि कहीं उन से भूल हो गई हैं। तथापि माता जी ने साहस बटोर कर अपने आने का प्रयोजन बता दिया। बाबा जी प्रयोजन सुनकर गम्भीर हो गये। तब तक दासियों ने रथ से भोजन उठाकर आश्रम में परोप दिया। सभी ने भोजन ग्रहण किया। किन्तु गम्भीर वातावरण बना रहा। भोजन उपरान्त बाबा

बुड्ढा जी ने माता जी से कहा - मैं आपका अदना सा दास हूँ, गुरू स्वयँ समर्थ हैं, उनके पास से समस्त याचक अपनी मनोकामनाएं पूर्ण करवाते हैं, वह तो आप जानती ही हैं, फिर मैं तुच्छ प्राणी किस योग्य हूँ। यह संक्षिप्त सा उत्तर सुनकर माता जी निराश लौट आई। अगले दिन उन्होंने श्री गुरू अर्जुन देव जी को समस्त दास्तां सुनाई और कहा - मैं वहाँ भी विफल रही हूँ। इस पर गुरूदेव जी ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि आप धैर्य रखें। आप ठीक स्थान पर ही गई थीं। वहीं से आपकी पुत्र कामना पूर्ण होनी है, किन्तु उसके लिए आपने उचित युक्ति नहीं अपनाई। आपको वहां गुरू-पत्नि अथवा माता बन कर नहीं जाना चाहिए था बल्कि एक याचिका, एक सेविका, एक साधारण महिला के रूप में, जो सन्तान की भिक्षा माँगने के लिए, नम्र भाव से महापुरूषों से प्रार्थना करती हैं, के रूप में जाना चाहिए था। गंगा जी को भूल का अहसास भी हुआ और उन्होंने युक्ति को ठीक से समझा।

कुछ दिन पश्चात् माता गँगा जी ने अमृत बेला में उठकर अपने हाथों से चक्की से आटा पीस कर उसकी बेसन वाली रोटियां बनाई और दही मथ कर एक सुराई में भर लिया। यह दोनों वस्तुएं सिर पर उठाकर दस कोस पैदल यात्रा करती हुई अमृतसर से झबाल गाँव दोपहर तक पहुँच गई। उस समय बाबा बुड्ढा जी खेतों का कार्य समाप्त कर भोजन की प्रतीक्षा में ही बैठे थे। उस समय उनको बहुत भूख सता रही थी, किन्तु अभी आश्रम से भोजन नहीं पहुँचा था। अकस्मात् गँगा जी के वहाँ पहुँचने से बुड्ढा जी बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने माता जी को भूख से व्याकुलता की बात बताई। बस फिर क्या था, माता जी ने भोजन परोस दिया। मन इच्छित भोजन देखकर बाबा जी सन्तुष्ट हो गये। भोजन के प्रारम्भ में ही माता जी ने उन्हें एक प्याज़ दिया, जिसे बाबा जी ने उसी समय मुक्का मार कर पिचका दिया और माता जी को आशीष देते हुए कहा - हे माता ! तुम्हारें यहाँ एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा, जो दुष्टों का ठीक वैसे ही नाश करेगा, जिस प्रकार हमने प्याज की गाँठ का नाश कर दिया है।

माता गँगा जी यह आशीष लेकर प्रसन्नतापूर्वक लौट आई। कुछ दिनों में उनका पाँव भारी हो गया। जब गँगा जी के गर्भवती होने क सूचना जेठानी कर्मो तथा जेठ पृथ्वीचन्द को मिली तो वे परेशान हो उठे, उनका दिन का चैन और रातों की नींद उड़ गई। उनके स्वप्नों का महल रेत की भांति बिखरने लगा था। उनकी यह आशा थी कि उनका ही पुत्र मिहरबान अगला गुरू बनेगा, समाप्त होने लगी थी। अब यह दम्पत्ति ओछे हथकंडों पर उतर आये और गृह कलेश उत्पन्न करने लगे।

संयुक्त परिवार में गृह कलेश एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर देती है। अत: बहुओं की सासू-माँ (भानी जी) ने एक कठोर निर्णय लिया और कहा - तुम दोनों अपनी अपनी गृहस्थी अलग बसा लो। इस पर श्री गुरू अर्जुन देव जी ने माता जी की आज्ञा का पालन करते हुए कुछ दिनों के लिए अमृतसर त्यागने का निश्चय किया और वह अपने सेवकों के निमन्त्रण पर अमृतसर नगर के पश्चिम में तीन कोस दूर वडाली गाँव में अस्थाई रूप से रहने लगे। यहीं माता गँगा जी ने 19 जून, 1595 तदनुसार 21 आषाढ़ 1652 संवत को एक स्वस्थ व सुन्दर बालक को जन्म दिया। श्री गुरू अर्जुन देव जी ने अपने बेटे का नाम हरि गोबिन्द रखा।

गुरूदेव जी के वडाली गाँव में रहने के कारण दूर दूर से संगत उनके दर्शनों की अभिलाषा लिए वहीं चली आती, इस कारण गाँव का बहुत जल्दी विकास होने लगा। इन्हीं दिनों वर्षा न होने के कारण पँजाब में अकाल पड़ गया। साधारण गहराई के कुओं का पानी भी सूखने लगा। पानी के अभाव को देखते हुए गुरूदेव जी ने बहुत से गहरे कुएं खुदवाए। स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सिंचाई के साध नों को विकसित करने का कार्यक्रम बनाया। जहाँ पहले एक-हरट वाले कुओं का निर्माण किया जाता था, आपने एक विशाल कुआं बनवाया, जिसमं छ: रहट एक ही समय में कार्यरत रह सकते थे। यह कुआं बुत सफल सिद्ध हुआ। इस गाँव का नाम ही इस कुएं के नाम पर पड़ गया। आज इस गाँव के स्थान को छेहरटा साहब कहा जाता है।

पृथ्वीचन्द के षड्यन्त्र

श्री गुरू अर्जुन देव जी और उनके बड़े भाई पृथ्वीचन्द जी परस्पर विपरीत प्रवृत्ति के स्वामी थे। जैसा कि हम पिछले अध्यायों में पढ़ कर चुके हैं। पृथ्वीचन्द एक साँसारिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसका स्थान आध्यात्मिक दुनिया में गौण था, इसलिए कुपात्र जानकर पिता गुरू रामदास जी ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया किन्तु उनके हृदय में केवल बड़ा लड़का होने के नाते गुरू बनने की लालसा सदैव बनी रही और उन्होंने इसके लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया। सदगुणों के अभाव में किसी ने भी उनको गुरू नहीं माना। सभी जानते थे कि गुरू पदवी कोई धरोहर अथवा विरासत की वस्तु नहीं। यह तो आध्यात्मिक दुनिया का प्रसाद है, जो कि व्यक्ति को शुभ गुणों से प्राप्त होती है। किन्तु पृथ्वीचन्द जी गुरू पदवी दुनिया की दूसरी वस्तुओं की तरह हथियाना चाहते थे, जो कि सम्भव न था। जब पृथ्वीचन्द जी पिता गुरूदेव से कुछ प्राप्त न कर सके तो वह ओछे हथकंडों पर उतर आये। उन्होंने कई बार गुरू बनने का स्वांग रचा परन्तु बुरी तरह असफल रहे, क्योंकि आत्मिक (ब्रह्म) ज्ञान के बिना गुरू बनना सम्भव नहीं होता। अन्त में वह इस बात पर आपनी आकांक्षा को शान्त कर लेते, चलो काई बात नहीं, यदि मैं गुरू पदवी प्राप्त न कर सका तो मेरा पुत्र मिहरबान अवश्य ही गुरू बनेगा क्योंकि अर्जुन जी के घर सन्तान नहीं है और वह मेरे पुत्र को ही अपना बेटा मानता है। अत: वह समय अवश्य ही आयेगा, जब मेरा बेटा मिहरबान गुरू पदवी को प्राप्त करेगा। किन्तु जब उन्हें यह समाचार मिला कि श्री गुरू अर्जुन देव जी के घर में एक सुन्दर व स्वस्थ बालक ने जन्म लिया है तो उनके स्वप्नों पर पानी फिर गया।

पृथ्वीचन्द अपने स्वप्नों का महल गिरता देख अति व्याकुल हो गया। कोई चारा न चलता देख, नीच प्रवृत्ति के ओछे हथकंडों पर

उतर आया। उसने बालक हरिगोबिन्द जी की जीवनलीला समाप्त करने की योजना बना डाली। कपटी तो वह था ही, उसने दाई फत्तो को दो सौ रूपये (चाँदी के सिक्के) दिये और उसके साथ सांठ-गांठ कर ली कि वह बालक को विष देकर मार दे। उसने ऐसा ही करने की योजना के अन्तर्गत अपने स्तनों पर विष लगा लिया और बालक को दूध पिलाने का अभिनय करने लगी, किन्तु प्रकृति की लीला कुछ और ही थी। बालक ने कड़वेपन के कारण स्तनों को स्पर्श कर मुँह फेर लिया और दूध नहीं पिया, परन्तु देखते ही देखते विष का प्रभाव उल्टे दाई को ही हो गया। वह छटपटाने लगी। मरते-मरते उसने सत्य उगल दिया और कहा कि मुझे पृथ्वीचन्द ने रिश्वत देकर बालक की हत्या करने के लिए प्रेरित किया था। श्री गुरू अर्जुन देव जी को जब इस घटना का पता चला तो उन्होंने कहा – प्रभु ! स्वयँ बालक का रक्षक है। वह जिस का साक्षी हो, उस पर किसी भी शत्रु का वार कारगर हो ही नहीं सकता। अत: चिन्ता करने की कोई बात नहीं और उन्होंने प्रभु का धन्यवाद किया कि आपकी कृपा दृष्टि से बालक घातक वार से पूर्ण सुरक्षित बच गया है।

दाई फत्तो के द्वारा अपराध स्वीकार करने तथा उसके ब्यानों से जन-साधारण में पृथ्वीचन्द की निन्दा प्रारम्भ हो गई। समस्त नगर में वह जहाँ भी विचरण करते, लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगते। इस क्रूर दृष्टि से तंग आकर उसने अमृतसर रहना त्याग दिया और अपने ससुरालवाले गाँव हेहरां में अपना स्थाई निवास बना लिया।

गाँव हेहरां जिला लाहौर में पड़ता है। पृथ्वीचन्द ने यहाँ पर अपने संचित धन से एक सरोवर तैयार करवाना प्रारम्भ किया और उसके केन्द्र में हरि मन्दिर (दरबार) साहब जैसा भवन बनाने की योजना बनाई। उसका विचार था कि तीर्थ स्नान अथवा भवन निर्माण के लिए जन-साधारण संगत रूप होकर श्रमदान करने के लिए आती है और उसने श्री गुरू अर्जुन देव जी की तरह वाणी रचने के लिए तुकबन्दी शुरू कर के नकली वाणी रचनी आरम्भ कर दी। उसका विचार था कि काव्य रचनाएं जिज्ञासुओं को आकृष्ट करती हैं। पृथ्वीचन्द स्वयँ पूर्वज गुरूजनों की तरह वेश-भूषा धारण करके, अपने आप सिंहासन पर विराजमान होकर दरबार सजाता और भोले-भाले लोगों में अपने को गुरू नानक देव जी का उत्तराधिकारी बताता। अपने संचित धन से लंगर इत्यादि भी बंटवाता। किन्तु सूझवान लोग उसके चंगुल में कभी नहीं आये। उसने ध न का लोभ देकर कई मसंद (एजेन्ट) भर्ती कर लिये, जिन्हें वह दूर-दराज क्षेत्रों में भेजता और उन के द्वारा सिक्खों में यह प्रचार करवाता कि पृथ्वीचन्द जी, श्री गुरू नानक देव जी के आदेश के अनुसार यह सतयुगी तीर्थ प्रकट कर उसका निर्माण करवा रहे है। उसने अपने सरोवर का नाम भी 'दुख निवारण' रख दिया। 'गुरू' के एकमात्र अभिनय से भूल से जन-साधारण चले आये किन्तु जब उन्हें किसी पराकर्मी पुरूष के दर्शन नहीं हुए तो वह पाखण्ड को समझते हुए फिर कभी वापिस नहीं आये। आते भी कैसे? नकली गुरू में तो सद्गुण थे ही नहीं, वह तो स्वयँ माया का भूखा और ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का व्यक्ति था। आध्यात्मिक दुनियां में सत्गुरू वही बन सकता है, जिसने मन पर विजय प्राप्त कर स्वयँ को उस सच्चिदानंद (अकालपुरूष) के संग एकमेव कर लिया हो। अत: पृथ्वीचन्द के सभी प्रयत्न विफल रहते।

जब नकली 'गुरू गद्दी' बुरी तरह पिट गई, लोग पाखण्ड और यथार्थ को समझने लगे तो पृथ्वीचन्द बौखला उठा। उसे कुछ सूझा नहीं कि वह क्या करे। उसने फिर अपने असफल होने का क्रोध गुरू अर्जुन देव जी पर निकालने के लिए उनके पुत्र श्री हरिगोबिन्द जी पर एक और घातक आक्रमण करने की योजना बनाई। बालक अब चलने योग्य हो गया था। इस बार उसने एक सपेरे के साथ सांठ-गांठ की और उसे कुछ स्वर्ण मुद्राएं देकर बडाली गाँव भेजा। सपेरे को लक्ष्य बता दिया गया कि बालक हरिगोबिन्द को अकेला देखकर उसको नाग से डसवाना है। कार्य पूरा होने पर बाकी की स्वर्ण मुद्राएं दी जानी थी। सेरे ने योजना अनुसार कार्य कर दिया, किन्तु बालक ने नाग को सिर से पकड़ लिया और उसे पकड़ते ही फर्श पर रगड़ दिया। साँप से सुरक्षा के लिए बन्दर भी ऐसा ही करते हैं। देखते ही देखते नाग वहीं ढ़ेर हो गया। तभी माता गँगा जी और दासियों ने देख लिया कि नाग बालक हरिगोबिन्द के हाथों में तड़प रहा है। उसी क्षण शोर मच गया। सेवक तुरन्त दौड़े और उन्होंने शक के आधार पर खोजबीन करके जल्दी ही सपेरे को पकड़ लिया। सपेरे ने पिटाई के बाद सारा भेद उगल दिया। जब गुरूदेव को इस घटना का पता चला तो वह शांत-अडौल रहे और कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं की। बस इतना ही कहा – जब अपने ही नीचता पर उतर आयें तो इस सपेरे का क्या दोष है? उदारचित गुरूदेव ने सपेरे को क्षमा कर दिया। इस घटना से माता गँगा जी और दासियाँ सभी सतर्क रहने लगी। पृथ्वीचन्द की लोक निन्दा बढ़ती चली गई, जिससे उसके गुरू डंम को भारी झटका लगा।

सन् 1597 ईस्वी में श्री गुरू अर्जुन देव जी वडाली गाँव से अमृतसर परिवार सहित लौट आये और यहीं पर फिर से गुरूमति के प्रचार-प्रसार के कार्यों में व्यस्त हो गये। उधर पृथ्वीचन्द भी बहुत ढ़ीठ था। लोक निन्दा ने उसका वास्तविक स्वरूप स्पष्ट कर दिया था और उसका गुरू डंम बुरी तरह विफल हो चुका था। अत: अब उसे लोकलाज की भी परवाह नहीं थी। उसने एक बार फिर बालक श्री हरि गोबिन्द जी पर घातक आक्रमण करने की योजना बना डाली। उसने इस बार गुरूदेव के घरेलू नौकर को लालच देकर अपने चंगुल में फँसा लिया। यह नौकर बालक हरिगोबिन्द जी की देखभाल करता था और उसे खिलौनों से बहलाता था। नौकर को एक विष की पुड़िया दी गई, जिसे उसने दही में मिलाकर बालक को सेवन करवानी थी। नौकर ने ऐसा ही किया, किन्तु बालक हरिगोबिन्द प्रतिदिन की तरह दही सेवन से इन्कार करने लगे और खूब हल्ला-गुल्ला करने लगे। इस पर माता गँगा जी तथा अन्य दासियाँ कारण जानने के लिए बालक के निकट पहुँची तो बालक ने तोतली भाषा में बताया कि दही कड़वी है। संशय होने पर दही कुत्ते को डाल दिया गया। पहले तो कुत्ता दही सूंघ कर हट गया, किन्तु विवश करने पर कुत्ते ने थोड़ा सा दही चखा तो वह वहीं तड़प कर मर गया। बस फिर क्या था, नौकर को स्थानीय पुलिस के हवाले कर दिया गया। पुलिस ने सभी भेद नौकर से उगलवा लिये किन्तु नौकर पुलिस की यातनाएँ सहन नहीं कर सका और वहीं दम तोड़ गया। मरते समय नौकर ने बताया कि उसे पृथ्वीचन्द ने इस कार्य के लिए बहुत सा धन दिया है। पहले दो हत्या के प्रयास बडाली गाँव में किये गये थे, परन्तु यह तीसरा हत्या का प्रयास अमृतसर नगर में हुआ था। अत: इस हत्या के प्रयास की गुत्थी सुलझाने में सरकारी कर्मचारियों का भी हाथ था। अत: इस बार पृथ्वीचन्द

की लोकनिन्दा सीमाएं पार कर गई और उसकी बहुत बदनामी हुई। वह किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहा। प्रभु कृपा से उसके तीनों वार खाली गए। गुरूदेव जी ने इस बार भी कोई रोष प्रकट नहीं किया। किन्तु इसके विपरीत पृथ्वीचन्द द्वेष में बौखला उठा और वह सोचने लगा कि मेरी लोक निन्दा का कारण मेरा छोटा भाई अर्जुन ही है। यदि मैं किसी युक्ति से इन्हें ही समाप्त कर दूं तो ही मेरे हृदय को शान्ति मिलेगी। अब वह दिनरात धन व्यय करके सरकारी रसूख पैदा करने में जुट गया। हेहरां गाँव से लाहौर नगर निकट है। अत: वह प्रशासनिक शक्ति प्राप्त करने के लिए लाहौर चला गया। वहाँ उसके पुराने मित्र मिले, जो कभी उसके मसंद (एजेन्ट) हुआ करते थे। उन में से बहुत ने सत्ताधारियों की निकटता प्राप्त की हुई थी। ऐसे ही एक मसंद ने उसे वहाँ के एक सैनिक अधिकारी से मिलवाया जो कि गुरू घर से ईर्ष्या करता था। इस सैनिक अधिकारी का नाम सुलही खान था। वह पृथ्वीचन्द की योजना सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बिना शर्त के पृथ्वीचन्द को आश्वासन दिया कि वह उसके रास्ते का काँटा चुटकियों में साफ कर देगा। वह निश्चिन्त हो जाये।

सुलबी खान की हसन अली द्वारा हत्या

सम्राट अकबर की सेना में सुलही खान और उसका भतीजा सुलबी खान सैनिक अधिकारी थे। पृथ्वीचन्द राजनैतिक शक्ति से श्री गुरू अर्जुन देव जी को परास्त करना चाहता था। अत: वह अपने मसंदों (एजेन्टों) द्वारा कई बार इन अधिकारियों से मिला और उनसे मित्रता स्थापित करने के लिए उन्हें कई बार बहुमूल्य उपहार भेंट किये। सांठ-गांठ में पृथ्वीचन्द ने यह सुनिश्चित करवा लिया कि अवसर मिलते ही वह गुरूदेव का अनिष्ट कर देंगे। किन्तु उनके पास ऐसा करने का कोई कारण न था, क्योंकि पृथ्वीचन्द सम्पत्ति का बंटवारे का भाग लेकर दस्तावेज गुरूदेव को सौंप चुका था। अत: उन्होंने एक काल्पनिक कहानी बनाई कि पृथ्वीचन्द के लड़के मिहरबान को श्री गुरू अर्जुन देव जी ने गोद लिया हुआ था, क्योंकि उनके उन दिनों कोई सन्तान नहीं थी। अत: अब उनको चाहिए कि वह मिहरबान को अगला गुरू सुनिश्चित करे और यह मुकद्दमा लाहौर की अदालत में पेश किया। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा – गुरू पदवी किसी की धरोहर की वस्तु नहीं होती। यह तो परमेश्वर का प्रसाद है अर्थात रूहानीयत का एक करिश्मा होता है। इसलिए यह सेवकों में से किसी को भी मिल सकती है। उत्तर उचित था, इसलिए मुकद्दमा खारिज हो गया। किन्तु पृथ्वीचन्द ने एक और याचिक दी कि मेरे लड़के को सिक्खी सेवकों से होने वाली आय में से आधी मिलनी चाहिए। इस बार भी गुरूदेव जी ने उत्तर भेजा कि सिक्खी सेवकों की आय भी तत्कालीन गुरू पदवी प्राप्त व्यक्ति की ही होती है क्योंकि वह तो सेवकों द्वारा प्रेम और श्रद्धा के पात्र बनने से सहज ही प्राप्त होती है। यह कोई लगान तो है नहीं, जिसे बलपूर्वक प्राप्त किया जा सके अथवा अधिकार बताया जा सके। यह उत्तर भी उचित था। न्यायधीश ने यह याचिका भी खारिज कर दी परन्तु पृथ्वीचन्द अड़ियल टट्टू था। उसने एक अन्य याचिक दी कि अर्जुन देव ने मिहरबान को अपना दत्तक पुत्र माना है। अत: उसको आधी सम्पत्ति मिलनी चाहिए। इस याचिका के उत्तर में गुरू देव जी ने उत्तर भेजा कि हमारे सभी पुत्र हैं। हम ने सभी से प्यार किया है। फिर भी हमने किसी को लिखित रूप में दत्तक पुत्र होने की घोषणा नहीं की। यदि मिहरबान हमें अपना पिता मानता है तो उसे हमारे पास रहना चाहिए। सम्पत्ति अपने आप समय आने पर मिल जायेगी। उत्तर यह भी उचित था। इसलिए न्यायधीश ने सुझाव दिया कि तुम्हारे पास कोई लिखित दस्तावेज नहीं। अत: प्यार-मौहब्बत से ही सम्पत्ति प्राप्त करो। किन्तु पृथ्वीचन्द को सन्तोष तो था नहीं। अत: उसने बल से सम्पत्ति बंटवाने की योजना बना डाली।

पृथ्वीचन्द दिल्ली गया। वहाँ उसने सुलबी खान को उकसाया कि वह अमृतसर पर आक्रमण करे और सैनिक बल से श्री अर्जुन देव को पुन: बँटवारे के लिए विवश करे अथवा वहाँ से सदैव के लिए उनको बेदखल कर दे। सुलबी खान भाइयों की फूट का लाभ उठाने के लिए अपनी सैनिक टुकड़ी लेकर अमृतसर की ओर चल पड़ा। रास्ते में जालन्धर नगर के उस पार व्यासा नदी के किनारे एक निष्कासित सेना अधिकारी सुलबी खान को मिला और उसने अपने पिछले वेतन के भुगतान के विषय में सुलबी खान से आग्रह किया। किन्तु सुलबी खान ने अभिमान में आकर वेतन के बदले उसे भद्दी गालियाँ दे डाली। इस पर वह भूतपूर्व सैनिक अधिकारी, जिसका नाम सैय्यद हसन अल्ली था, आत्मसम्मान को लगी ठेस सहन नहीं कर पाया। उसने तुरन्त म्यान से तलवार निकाली और क्षण भर में सुलबी खान का सिर कलम कर दिया। स्वयँ वहाँ से भाग कर व्यासा नदी के दलदल क्षेत्र में लुप्त हो गया। सरदार के अभाव में सेना लौट गई। इस प्रकार पृथ्वी चन्द की यह योजना निष्फल हो गई और वह भाग्य को कोसता रह गया।

सुलही खान

पृथ्वीचन्द व सुलही खान का ईर्ष्यावश लक्ष्य एक ही था। अत: उनकी मित्रता प्रगाढ़ रूप धारण कर गई। सुलही खान ने सैनिक टुकड़ी लेकर लाहौर से दिल्ली जाना था। अत: वह पृथ्वीचन्द को साथ लेकर अमृतसर की ओर चल पड़ा। रास्ते में हेहरां गाँव पड़ता था। इसलिए पृथ्वीचन्द ने उसे अपने घर प्रीतिभोज दिया औरउसका भव्य स्वागत किया। अब पृथ्वीचन्द सन्तुष्ट था कि अब की बार उसका शत्रु अवश्य ही मारा जायेगा।

दूसरी तरफ श्री गुरू अर्जुन देव जी को यह सूचना उनके श्रद्धालु सिक्खों ने तुरन्त पहुँचा दी कि आप पर सुलही खान आक्रमण करने वाला है। अत: आप कोई अपनी सुरक्षा का समय रहते उपाय कर लें, किन्तु गुरूदेव शांतचित्त व अडौल बन रहे। गुरूदेव को गम्भीर मुद्रा में देखकर कुछ सिक्खों ने उन से आग्रह किया कि हमें अमृतसर नगर तुरन्त त्याग देना चाहिए ताकि शत्रु के हाथ न आ सके। कुछ सिक्खों ने गुरूदेव जी को सुझाव दिया कि आपको तुरन्त एक प्रतिनिधि मण्डल सुलही खान के पास भेजकर उसके साथ कुछ ले-देकर एक संधि कर लेनी चाहिए।

कुछ ने सुझाव दिया कि हमें शत्रु का सामना करना चाहिए, आदि आदि। भान्ति-भान्ति के विचार गुरूदेव जी ने सुने, किन्तु वे अडौल, शान्तचित्त, प्रभु भजन में व्यस्त हो गये। जब आपने कुछ लोगों को भयभीत देखा तो सभी को कहा - हमें प्रभु चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए क्योंकि हम निर्दोष है। वही सर्वशक्तिमान हमारी सुरक्षा करेगा।

हेहरां गाँव में पृथ्वीचन्द ने अपने द्वारा बनाये गये सरोवर के केन्द्र में भवन बनाने के लिए ईटों का भट्ठा लगाया हुआ था। उसमें ईटें पक रही थी। उसके मन में आया कि मैं अपने अथिति को गाँव की सैर करवा दूँ और दिखाऊं कि कौन कौन से विकास कार्य किये जा रहे हैं। अत: वह सुलही खान को ईटों के आवे के पास ले गया। उस समय सुलही खान सैनिक पोशाक में घोड़े पर सवार था, वह एड़ी लगाकर घोड़ें को ईटों के आवे पर चढ़ा ले गया। आवा अन्दर से बहुत गर्म था, जैसे ही घोड़े के पाँव गर्मी से जले वह बिदक गया। जिससे कुछ ईटे खिसक गई और वे नीचे जा गिरी। बस इस प्रकार घोड़ा सन्तुलन खो बैठा और वह देखते ही देखते तेज आग में जा गिरा। आग बहुत तेज थी, क्षण भर में ही घोड़े सहित सुलही खान राख का ढ़ेर बन गया। इस प्रकार पृथ्वीचन्द का यह प्रयास भी बुरी तरह विफल हो गया।

जल्दी ही यह सूचना अमृतसर गुरू अर्जुन देव जी के पास पहुँच गई कि सुलही खान मारा गया है। उसी क्षण गुरूदेव जी ने अकाल पुरूष का धन्यवाद किया और संगत को बताया कि निर्दोषों को सदैव एक प्रभु का ही आश्रय होता है। यदि हम प्रभु (अकालपुरूष) पर पूर्ण भरोसा रखे तो वह स्वयँ रक्षा करता है। जब वह सर्वशक्तिमान हमारे साथ है तो कोई भी बड़े से बड़ा शत्रु हमारा बाल बाँका भी नहीं कर सकता। आपने इस घटनाक्रम को प्रभु का धन्यवाद करते हुए इस प्रकार कलमबद्ध किया : -

प्रथमे मता जि पत्री चलावउ।
दुतीए माता दुइ मानुख पहुचावउ।
त्रितीए मता किछु करउ उपाइआ।
मैं सभु किछु छोडि प्रभु तुही धिआइआ।
महा अनंद अचिंत सहजाइआ।
दुसमन दूत मुए सुखु पाइआ।
सतिगुरि मो कउ दीआ उपदेसु।
जीउ पिंडु सभु हरि का देसु।
जो किछु करी सु तेरा ताणु।
तूं मेरी ओट तूं है दीबाणु।
तुध नो छोडि जाईऐ प्रभ कै दरि।
आन न बीआतेरी समसरि।
तेरे सेवक कउ किस की काणि।
साकतु भूला फिरै बेबाणि।
तेरी वडिआई कही न जाइ।
जह कह राखि लहि गलि लाइ।
नानक दास तेरी सरणाई।
प्रभि राखी पैज वजी वाधाई।

राग आसा, महला एवं पृष्ठ 37

लाहौर नगर के अकाल पीड़ितों की सहायता

श्री गुरू अर्जुन देव जी को लाहौर की संगत ने आमन्त्रित किया और उनको जनसाधारण की तरफ से प्रार्थना लिख भेजी कि वर्षा न होने के कारण नगर के निम्न वर्ग की दशा दयनीय है। समस्त क्षेत्र में सूखा पड़ने के कारण अनाज का अभाव हो गया है। अकालग्रस्त लोग गरीबी के कारण भयंकर बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। हैजा, मियादी बुखार, चेचक इत्यादि रोग फैलते जा रहे हैं। उपचार के कोई साधन दिखाई नहीं देते। यहाँ तक कि मृतकों की संख्या अधिक होने के कारण उनके शवों की अंत्येष्टि क्रिया अथवा दफन करने का कोई संतोषजनक प्रबन्ध भी नहीं है। ऐसे में महामारी फैलने का भय व्याप्त है। कृपया आप इस कठिन समय में यहाँ पधारे और जनसाधारण को इस प्राकृतिक प्रकोपों के समय उनकी सहायता करके कल्याण करें।

गुरूदेव ने तुरन्त ही अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए गुरूघर के कोष से दसवंध की राशि ली और लाहौर प्रस्थान कर गये। वहाँ उन्होंने अपने समस्त अनुयाइयों को संगठित किया और स्वयँ सेवकों की टुकड़ियाँ बनाकर नगर के कोने कोने में भेजी। इन स्वयँ सेवकों ने समस्त अकाल पीड़ितों के लिए स्थान स्थान पर लंगर (भण्डारे) लगा दिये तथा रोगियों के लिए निःशुल्क दवा का प्रबन्ध कर दिया। जिन लोगों की मृत्यु हो गई थी उनके पार्थिव शरीर की अंत्येष्टि सामुहिक रूप में सम्पन्न कर दी गई। गर्मी के कारण पेयजल की कमी स्थान स्थान पर अनुभव हो रही थी। गुरूदेव जी ने एक पंथ दो काज के सिद्धान्त को सम्मुख रख कर नये कुएं खुदवाने प्रारम्भ कर दिये, जिससे वहाँ कई बेरोजगार व्यक्तियों को काम मिल गया। समस्या बहुत गम्भीर और विशाल थी। इसलिए गुरूदेव ने बेरोजगारों को काम दिलवाने के लिए कई योजनाएं बनाई। जिसमें उन्होंनें कुछ ऐतिहासिक भवन बनवाने प्रारम्भ किये जिससे सर्वप्रथम बेरोजगारी की समस्या का समाधान हो जाये। दूसरी तरफ मृत व्यक्तियों के परिवारों में कई बच्चे अनाथ हो गये थे, जिनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं था। गुरूदेव ने दूसरे चरण में उन समस्त बच्चों को एकत्र करवाया, जिनका अपना सगा-सम्बन्धी कोई नहीं बचा था और उनकी देखभाल के लिए अनाथालय खोल दिया। जिससे से पीड़ित बच्चों को गुरूदेव का संरक्षण प्राप्त हो गया। इस शुभ कार्य को देखकर स्थानीय कुछ धनाढ़य लोगों ने गुरूदेव के कोष में अपना योगदान देना प्रारम्भ कर दिया। उन दिनों स्थानीय प्रशासन की तरफ से जनता की भलाई के लिए कोई विशेष कार्यक्रम नहीं हुआ करते थे। यह समाज सेवा की निष्काम बातें जब स्थानीय राज्यपाल 'मुर्तजा खान' को सुनने को मिली तो वह गुरूदेव से मिलने चला आया। उसने अपनी सरकार की ओर से गुरू अर्जुन देव जी का धन्यवाद किया और कहा कि प्रशासन आपका ऋणी है। जो कार्य हमारे करने का था, वह आपने किया है। अतः हम सभी लोग आपके सदैव आभारी रहेंगे। विचारविमर्श में मुर्तजा खान ने अपनी विवशता व्यक्त करते हुए कहा - अकाल के कारण प्रदेश के किसानों ने लगान जमा ही नहीं कराया इसलिए खजाने खाली पड़े हुए हैं। मैंने यहाँ के किसानों तथा मजदूरों की शोचनीय दशा केन्द्रीय सरकार को लिखी है। बादशाह अकबर स्वयँ कुछ दिनों में यहाँ तशरीफ ला रहे हैं। गुरूदेव ने राज्यपाल मुर्तजा खान की मजबूरी को समझा और उसे सांत्वना दी और कहने लगे कि यदि बादशाह अकबर यहां आते हैं तो हम उससे मिलना चाहेंगे। राज्यपाल ने गुरूदेव को आश्वासन दिया कि मैं आपकी भेंट सम्राट अकबर से अवश्य ही करवाऊँगा।

जब सम्राट का पँजाब जैसे समृद्ध क्षेत्र से लगान नहीं मिला तो वह वहाँ के राज्यपाल के संदेश पर स्वयँ स्थिति का जायजा लेने पंजाब पहुँचा। राज्यपाल मुर्तजा खान ने समय का लाभ उठाते हुए सम्राट अकबर की भेंट गुरूदेव से निश्चित करवा दी। गुरूदेव ने सूखाग्रस्त क्षेत्रों के किसानों की आर्थिक दशा का चित्रण अकबर के समक्ष किया वह गुरूदेव के तर्कों के सम्मुख झुक गया और उसने उस वर्ष का लगान क्षमा कर दिया। गुरूदेव का मानवता के प्रति निष्काम प्रेम देखकर, सम्राट अकबर के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई और उसने गुरूदेव से बहुत सी 'भक्तिवाणी' सुनी, जिससे उसके मन के संशय निवृत्त हो गये। उन्हीं दिनों गुरूदेव को स्थानीय सूफी फकीर साई मीया मीर जी भी मिलने आये। उन्होंने गुरूदेव से कहा - मैं आप द्वारा रचित वाणी सुखमनी साहब प्रतिदिन पढ़ता हूँ, मुझे इस रचना में बहुत आनन्द प्राप्त होता है क्योंकि इसमें जीवन युक्ति छिपी हुई है किन्तु मुझे एक विशेष पंक्ति पर आप से कुछ जानकारी प्राप्त करनी है। इस पर गुरूदेव ने कहा - आप अवश्य ही जो भी पूछना चाहते हैं, पूछिये। साई मीयां मीर जी ने पूछा आप अपनी रचना में ब्रह्मज्ञानी के लक्षणों का वर्णन करते हैं। क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति के दर्शन करवा सकते हैं अथवा इन पंक्तियों के अर्थ स्पष्ट कर सकते हैं -

ब्रह्म गिआनी कै मित्र सत्र समानि।
ब्रह्म गिआनी कै नाही अभिमान।

उत्तर में गुरूदेव ने कहा - आप कुछ दिन प्रतीक्षा कीजिए, समय आने पर इस पंक्ति के अर्थ आप स्वयँ जान लेंगे और ब्रह्मज्ञानी के दर्शनों की इच्छा भी आपकी अवश्य ही पूर्ण होगी।

भाई बुद्धु शाह

भाई बुद्धु शाह लाहौर नगर का एक धनाढ़य व्यक्ति था। यह ईटों का निर्माण अथवा व्यापार करता था। परन्तु किसी कारण इस के ईटों के भट्ठे में नुक्स उत्पन्न हो गया जिस कारण ईंटे उत्तम श्रेणी की नहीं बन पा रही थी। अतः उन्हें लाभ के स्थान पर हानि हो जाती थी। जब इन्हें मालूम हुआ कि श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी श्री गुरू अर्जुन देव जी जन-कल्याण के कार्यो के लिए लाहौर विचरण कर रहे हैं तो यह गुरूदेव के समक्ष अपनी विनती लेकर उपस्थित हुआ और निवेदन करने लगा कि कृपया आप संगत सहित मेरे गृह में पधरें क्योंकि मैं समस्त संगत से प्रभु चरणों में प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वह मेरे व्यवसाय में बरकत डाले जिससे मुझे हानि के स्थान पर लाभ हो। गुरूदेव ने उसकी श्रद्धा देखकर उसके यहाँ के कार्यक्रम में सम्मिलित होने की स्वीकृति दे दी।

निश्चित समय पर भाई बुद्धु शाह जी के यहाँ एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिस में समस्त संगत के लिए लंगर (भण्डारा) का वितरण भी था। गुरूदेव के वहाँ विराजने से संगत का बहुत बड़े पैमाने पर जमावड़ा हो गया। सर्वप्रथम कीर्तन की चौकी हुई, तद्‌पश्चात गुरूदेव ने समस्त मानवता के प्रति प्रेम के लिए प्रवचन कहे और अन्त में प्रभु चरणों में अरदास (प्रार्थना) की गई कि हे प्रभु ! भाई बुद्धु शाह के ईटों के भट्ठे की ईटे पूर्ण रूप से पक्क जायें। समस्त संगत ने भी इस बात को ऊँचे स्वर में कहा - भाई बुद्धु शाह का आवा पक्का होना चाहिए। किन्तु मुख्य द्वार के बाहर खड़े एक व्यक्ति ने संगत के विपरीत गुहार लगाई। भाई बुद्धु का आवा कच्चा ही रहना चाहिए।

संगत का ध्यान बाहर खड़े उस व्यक्ति पर गया जिस का नाम भाई लखू पटोलिया था, वह व्यक्ति मस्ताना फकीर था, इस लिए इसके वस्त्र मैले, पुराने तथा अस्त-व्यस्त थे किन्तु गुरूदेव के दर्शनों की लालसा उसे वहाँ खींच लाई थी। स्वागत द्वार पर खड़े मेजबानों ने उसे अथिति नहीं माना और प्रवेश नहीं करने दिया। इस पर भाई लखू पटोलिया (मस्ताना फकीर) जी ने उनसे निवेदन किया कि मैं केवल गुरूदेव के दर्शन की अभिलाषा लेकर आया हूँ और मुझे किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। किन्तु उसकी विनती पर किसी ने ध्यान नहीं दिया अपितु तिरस्कार की दृष्टि से देखकर दूर खड़े रहने का आदेश दिया।

जब गुरूदेव ने गुहार करने वाले व्यक्ति के विषय में जानकारी प्राप्त की तो उन्होंने भाई बुद्धु शाह से कहा – आप से बहुत बड़ी भूल हो गई है। इस बाहर खड़े व्यक्ति ने हृदय से प्रार्थना के विपरीत गुहार लगाई है। अत: अब हमारी प्रार्थना प्रभु स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि वह अपने भक्तजनों की पीड़ा सर्वप्रथम सुनते हैं। यह सुनते ही भाई बुद्धु गुरूदेव के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा – मैंने इस बार बहुत भारी कर्ज लेकर भट्ठा पकवाने पर व्यय किया है। यदि इस बार भी ईंटे उचित श्रेणी की न बन पाई तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा। तब गुरूदेव ने समस्या का समाधान किया और कहा – यदि तुम भाई लखू पटोलिया जी को प्रसन्न कर लो तो वही आप के लिए कुछ कर सकते हैं मरता क्या नहीं करता, किवदन्ति अनुसार भाई बुद्धु शाह प्रायश्चित करने के लिए भाई लखू पटोलिया के चरणों में जा गिरा और विनती करने लगा कि मुझे आप क्षमा कर दें, मुझ से अनजाने में आपकी अवज्ञा हो गई है। दयालु भाई लखू जी उसकी दयनीय दशा देखकर पसीज गये और उन्होंने वचन किया, तुम्हारा आवा तो अब पक्का हो नहीं सकता किन्तु दाम तुम्हें पक्की ईटों के समान ही मिल जायेंगे।

भाई लखू जी ने वचन सत्य सिद्ध हुए। भाई बुद्धु का आवा इस बार भी कच्चा ही निकला परन्तु वर्षा ऋतु के कारण ईटों का अभाव हो गया। स्थानीय प्रशासन को किले की दीवार की मरम्मत करवानी थी अथवा नव निर्माण का कार्य समय पर पूरा करना था, अत: ठेकेदारों ने भाई बुद्धु को पक्की ईटों का दाम देकर समस्त ईटे खरीद ली।

समन – मुसन

श्री गुरू अर्जुन देव जी को निरन्तर समाचार प्राप्त हो रहे थे कि लाहौर नगर में कई प्रकार के संक्रामक रोग फैले हुए हैं। जिस कारण वहाँ की जनता बहुत परेशान है। रोगों के उपचार के संतोषजनक साधन न होने के कारण बहुत लोगों की अकाल मृत्यु हो रही थी। यह सब जानकर आपका हृदय द्रवित हो उठा और आपने निश्चय किया कि ऐसी विपत्ति भरे समय में वहाँ के नागरिकों की सहायता करनी चाहिए। अत: आप जी ने स्वयँ सेवकों का एक जत्था अपने साथ लिया और लाहौर निवासियों की पीड़ा हरने के प्रयोजन से लाहौर पहुँच गये।

लाहौर निवासियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया और इस कार्य के लिए सभी प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन दिया। आप जी ने स्थान स्थान पर सहायता शिविर बना दिये। बीमारों का नि:शुल्क दवा उपलब्ध होने लगी। धीरे धीरे रोगों का प्रकोप कम होने लगा। इस बीच आप स्थान स्थान पर लोगों के घरों इत्यादि में आध्यात्मिकतावाद को प्रोत्साहित करने के लिए प्रवचन करने लगे। आपके प्रवचनों का प्राय: विषय होता – निम्न वर्ग अथवा असहाय व्यक्तियों की हर दृष्टि से सहायता किस प्रकार की जाये, जिससे समाज में समानता लाई जा सके अथवा प्राकृतिक प्रकोपों के समय एक दूसरे की सहायता कर दुखों से मुक्ति प्राप्त की जा सके।

समाज के धनी लोगों पर आपके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव हुआ, वह लोग आपके प्राकृतिक प्रकोप सहायता कोष में खुले मन से धन देने लगे। कुछ धनी लोग आपको आमन्त्रित करने लगे और आप के प्रवचनों के पश्चात् समाज के सभी वर्ग के लोगों के लिए लंगर व्यवस्था करते। इस प्रकार आपने लाहौर निवासियों के जीवन में भाई चारे की भावना की क्रान्ति ला दी, जिससे समाज का उत्थान होने लगा। इस जागृति की लहर ने जनसाधारण में निराशा के स्थान पर नये उत्साह का संचार होने लगा। जिसके अन्तर्गत दो श्रमिकों ने गुरूदेव जी को निमन्त्रण दिया कि वह हमारे गृह-प्रवचन करें। ये श्रमिक आपस में रिश्ते अनुसार पिता-पुत्र थे। इन को समाज में समन-मुसन कर के जाना जाता था। गुरूदेव जी के प्रवचनों के पश्चात् प्राय: स्थानों पर मेजबान लोग यथाशक्ति संगत को लंगर में नाश्ता इत्यादि करवाते थे। समन-मुसन प्रतिदिन प्रात: गुरूदेव जी के प्रवचन सुनने जाते और नाश्ता इत्यादि वहीं करके सीधे अपने कार्यस्थल पर पहुँच जाते। वे पिता-पुत्र मन ही मन विचार करते कि हम तो जिज्ञासा की तृप्ति के कारण प्रवचन सुनने जाते हैं परन्तु लोग शायद यह विचारने लगे हैं कि हम केवल नाश्ता इत्यादि सेवन की लालसा के कारण प्रवचन स्थल पर पहुँचते हैं। अत: हमें भी एक दिन समस्त संगत को न्यौता देना चाहिए, परन्तु इसमें अधिक खर्चा है, जो कि हमारी क्षमता से बाहर है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम इस शुभ कार्य के लिए कहाँ से कर्ज इत्यादि की व्यवस्था कर ले। धीरे धीरे हम कर्ज लौट देंगे? विचार अच्छा था, अत: उन दोनों ने एक पड़ौसी हलवाई से बात की और उसे बताया कि हम एक दिन गुरूदेव तथा संगत को प्रीति भोज देना चाहते हैं, यदि वह इस कार्य के लिए हमें उधार दें जिससे प्रात: संगत के लिए नाश्ते की व्यवस्था हो जाये। हम गुरूदेव जी से आग्रह करेंगे कि अगले दिन हमारे यहाँ समागम रखे और हमें सेवा का अवसर प्रदान करें।

हलवाई इन सच्चे सेवकों की सेवा भाव को मद्देनज़र रखते हुए नाश्ते की सामग्री उधार देना स्वीकार कर लिया। इसी आधार पर पिता-पुत्र ने अगले दिन गुरूदेव जी से निवेदन/आग्रह किया कि उनके यहाँ भी किसी दिन समागम रखा जाये। गुरूदेव जी ने उनका आग्रह स्वीकार कर लिया और तिथि निश्चित कर दी गई। उस समय प्रवचन स्थल पर एक साहूकारभी बैठा था, जो कि समन-मुसन का पड़ौसी था। उसने विचार किया कि मैंने अधिक खर्च के डर से आज तक गुरूदेव जी को आमन्त्रित नहीं किया, जबकि इन मज़दूरों ने संगत को मिन्त्रण

दिया है। यह मेरे लिए चुनौती है। ईर्ष्या में साहूकार ने पता लगवाया कि इन श्रमिकों के पास लंगर करने के लिए धन कहाँ से आया? जब उसे मालूम हुआ कि स्थानीय हलवाई ने समस्त तैयार सामग्री उधार देने पर सहमति दी है तो वह साहूकार हलवाई के पास पहुँआ और उसे कहा - तुम मूर्ख हो, जो बिना किसी जमानत के उधार सामग्री देने पर तुले हो, पहले समन-मुसन से जमानत माँगो, फिर उधार देना, नहीं तो क्या पता तेरा धन डूब जाये। वे तो मज़दूर हैं, कभी दिहाड़ी लगती है तो कभी नहीं। हलवाई को इस बात में दम दिखाई दिया और वह तुरन्त समन-मुसन के पास पहुँचा और उसने जमानत माँगी। जमानत न मिलने पर तैयार खाद्य सामग्री देने से इन्कार कर दिया।

इधर समन-मुसन पर हलवाई का इन्कार सुनते ही व्रजपात हुआ। वे सकते में आ गये कि अब क्या किया जाये। यदि संगत आने पर तैयार खाद्य सामग्री न मिली तो बहुत बदनामी होगी। मुसन ने एक युक्ति पर पिता जी को विचार करने को कहा - पिता जी को युक्ति अच्छी नहीं लगी किन्तु मरता क्या न करता - युक्ति में कुछ संशोधन कर, युक्ति को व्यवारिक रूप दे दिया।

वे दोनों पड़ौसी साहूकार की छत पर चढ़ गये। ऊपर की छत का मग (हवा और रोशनी के लिए बनाया गया एक फुट का छिद्र) अकस्मात् खुला ही पड़ा था। इन दोनों पिता-पुत्र ने योजना अनुसार कार्य प्रारम्भ किया। पिता ने लड़के को रस्सी से बांद कर नीचे लटकाया। लड़का नीचे उतरा और उसने घर की तिजोरी को खोला और उसमें से चाँदी के सिक्कों की थैली निकाल कर पिता को थमा दी। किन्तु पिता पुत्र का वापस बाहर निकालने का प्रयास करने लगा तो वह वापस बाहर नहीं निकाल पाया क्योंकि छिद्र बहुत छोटा और तंग था। नीचे उतरते समय तो वह जैसे-कैसे उतर गया था, किन्तु वापस ऊपर नहीं आ पाया। पिता ने पुत्र को बाहर निकालने के भरसक प्रयास किया कि जैसे-तैस वह ऊपर निकल आये, किन्तु ऐसा सम्भव न हो सका। अन्त में पुत्र ने पिता जी को परामर्श दिया कि वह उसका सिर काट कर घर ले जाये। जिससे उन पर चोरी का आरोप ना लग जाये, नहीं तो गुरूदेव जी के समक्ष मुँह दिखाने के योग्य नहीं रह जायेंगे।

मरता क्या नहीं करता की किवंदति के अनुसार पिता ने तलवार लाकर पुत्र का सिर काट लिया और उसे ले जा कर घर की छत पर एक चादर में छिपा दिया। सिक्कों की थैली समय रहते हलवाई को दे दी और उससे समस्त खाद्य सामग्री देने के लिए सहमति प्राप्त कर ली।

प्रात:काल जब साहूकार उठा तो उसने अपने घर के भीतर बिना सिर के शव देखा तो वह भयभीत हो गया। उसे पुलिस का भय सताने लगा, उसने दूरदृष्टि से काम लेते हुए पड़ौसी सुमन को सौ रूपये दिये और शव को वहाँ से हटाने को कहा - सुमन ने पुत्र का शव चादर में लपेट कर अपनी छत पर एक चारपाई पर डाल दिया और उसके साथ उसका सिर सटाकर रख दिया और ऊपर से चादर डाल दी।

निर्धारित समय पर संगत की एकमत्त हुई, जिसमें गुरूदेव जी ने कीर्तन के उपरान्त अपने प्रवचनों से संगत को कृतार्थ किया। तद्पश्चात् लंगर वितरण के लिए संगत की पंक्तियाँ लग गई। हलवाई ने समय अनुसार तैयार खाद्य सामग्री भिजवा दी थी। जब भोजन वितरण होने लगा तो गुरूदेव जी ने सुमन से कहा - जब तुम संगत को न्यौता देने आये थे तो तुम्हारा पुत्र भी तुम्हारे साथ था, वह अब कहीं दिखाई नहीं देता, क्या बात है? इस पर सुमन ने गुरूदेव जी से कह दिया कि वह इस समय गहरी नींद में सो रहा है। गुरूदेव जी ने कहा - अच्छा उसे उठाकर लाओ। सुमन ने उत्तर दिया कि अब वह मेरे उठाने पर भी उठने वाला नहीं है। कृपया आप स्वयँ ही उसे उठा सकते हैं। तब गुरूदेव जी ने ऊँचे स्वर में आवाज लगाई कि मुसन लंगर का समय हो गया है, अब तो चले आओ। बस फिर क्या था, देखते ही देखते घर की छत से युवक मुसन भागता हुआ नीचे चला आया और वह गुरू चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर लंगर वितरण करने लगा। यह आश्चर्य देखकर पिता सुमन गदगद् हो गया और वह कहने लगा कि हे गुरूदेव ! आप पूर्ण हैं। आप सदैव भक्तों की लज्जा रखते हैं और अगली रात उसने सौ रूपयों की थैली साहूकार की छत के मग से उसके घर फैंक दी।

शीतला (चेचक) रोग

श्री गुरू अर्जुन देव जी प्रचार अभियान के अन्तर्गत लोक कल्याण के लिए कुछ विशेष कार्यक्रम चला रहे थे, जिसमें अकालग्रस्त क्षेत्रों में कुएं खुदवाना तथा पीड़ितों के लिए लंगर, दवाएं इत्यादि का प्रबन्ध उल्लेखनीय था। सन् 1599 ईस्वी की बात है कि आपको सूचना मिली कि लाहौर नगर में अकाल पड़ गया है और वहाँ लोग भूख-प्यास के कारण मर रहे हैं तो आप से न रहा गया। आपने कमजोर वर्ग के लिए सहायता शिविर लगाने के विचार से अपने समस्त अनुयायियों को प्रेरित किया और स्वयँ परिवार सहित लाहौर नगर पहुँच गये। परिवार को साथ रखना अति आवश्यक था क्योंकि आपके भाई पृथ्वीचन्द ने ईर्ष्या के कारण आप के सुपुत्र बालक हरिगोबिन्द जी पर कई घातक आक्रमण अपने षड्यन्त्रों द्वारा किये थे, अत: बालक की सुरक्षा अति आवश्यक थी।

जब आप लाहौर नगर में जनसाधारण के लिए सहायता शिविर चला रहे थे तो उन्हीं दिनों वहाँ पर मलेरिया व शीतला (चेचक) जैसे रोग विकराल रूप धारण कर घर घर फैले हुए थे। असंख्य मनुष्य इन रोगों का सामना न कर मृत्यु की गोद में समा रहे थे। लाहौर नगर की गलियाँ शवों से भरी हुई थी। प्रशासन की ओर से कोई व्यवस्था ही नहीं थी। ऐसे में आप द्वारा चलाये जा रहे सहायता शिविरों के स्वयँ सेवकों ने नगरवासियों के सभी प्रकार के दुखों को दूर करने का बीड़ा उठा लिया। आप स्वयँ रोगग्रस्त क्षेत्रों में लोक सेवा के लिए भ्रमण कर के लोगों को राहत पहुँचा रहे थे। इसी बीच आपके बालक हरि गोबिन्द जी को छूत का रोग शीतला (चेचक) ने आ घेरा। किन्तु आप विचलित नहीं

हुए। आपने तुरन्त परिवार को उपचार के लिए वापिस अमृतसर भेज दिया। किन्तु आप जानते थे कि जनसाधारण में दकियानूसी विचार प्रबल हैं, अशिक्षा के कारण लोग शीतला (चेचक) रोग को माता कहते हैं और इस रोग का उपचार न कर अंधविश्वासों के अन्तर्गत काल्पनिक देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, जिनका अस्तित्त्व भी नहीं है। अत: आप स्वयँ भी अमृतसर वापिस पधारे और अपने बालक का उपचार करने लगे।

प्राय: इस रोग के लक्षण इस प्रकार होते हैं - पहले तेज बुखार होता है, दूसरे-तीसरे दिन रोगी बेहोश होना शुरू हो जाता है। शरीर से अग्नि निकलती प्रतीत होती है, उसके पश्चात् सारा शरीर फफोलों से भर जाता है। ज्यों ज्यों फफोले निकलते हैं, मूर्छा कम होती जाती है। यह रोग इतना भयानक होता है कि कई रोगियों की आँखे खराब हो जाती हैं, वे अन्धे हो जाते हैं तथा व्यक्ति सदा के लिए कुरूप हो जाता है।

उन दिनों शिक्षा के अभाव के कारण अथवा अज्ञानता के कारण अंधविश्वास का बोलबाला था। दकियानूसी लोग वहमों, भ्रमों को बढ़ावा देते रहते थे। ये लोग शीतला रोग को माता कह कर पुकारते थे और उसके लिए जलाशयों के किनारे विशेष मन्दिर निर्माण कर के शीतला की माता कहकर पूजा इत्यादि किया करते थे। उनका विश्वास था कि यह रोग माता जी के कोपी होने के कारण होता है। इसलिए रोगी व्यक्ति को दवा इत्यादि नहीं देते थे।

जैसे ही अमृतसर के स्थानीय निवासियों को ज्ञात हुआ कि गुरूदेव जी के बालक हरिगोबिन्द जी शीतला रोग से पीड़ित हैं तो वे औपचारिकतावश बालक के स्वास्थ्य का पता लगाने आने लगे। उन्होंने पाया कि गुरूदेव जी अडोल प्रभु लीला में प्रसन्न हैं और बालक के उपचार के लिए वैद्य लोगों से विचारविमर्श में व्यस्त हैं। कुछ रूढ़िवादी लोगों ने आपको परामर्श दिया कि आप बालक को शीतला माता के मन्दिर में ले जायें और वहाँ माता की पूजा करे। गुरूदेव जी ने उन्हें समझाया कि सभी प्रकार की शक्तियों का स्वामी वह प्रभु निराकार, दिव्य ज्योति स्वयँ आप ही हैं। हम केवल और केवल उसी की उपासना अर्चना करते हैं और आप भी केवल उसी सच्चिदानंद की आराधना करें।

गुरूदेव जी की करनी-कथनी में समानता थी। वह जो जनसाधारण को उपदेश देते थे, पहले अपने जीवन में दृढ़ता से अपनाते थे। वह कभी भी कठिन परिस्थितियों में भी विचलित नहीं हुए। वह जनसाधारण के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे कि प्रभु अपनी लीला द्वारा भक्तजनों की बार बार परीक्षा लेता है परन्तु हमें दृढ़ निश्चय में अडोल रहना चाहिए और विचलित नहीं होना चाहिए। आपने प्रभु आराधना करते हुए निम्नलिखित पद्य कहे।

नेत्र परगासु कीआ गुरूदेव।
भरम गए, पूरन भई सेव। ।। रहाउ।
सीतला ते रखिआ बिहारी।
पारब्रह्म प्रभु किरपा धारी। 2)
नानक नाम जपै सो जीवै।
साध संगि हरि अम्रित पीवै।

(राग गउड़ी महला 5 वां पृष्ठ 200)

माता भानी जी का निधन

श्री गुरू अर्जुन देव जी अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए जब परिवार सहित लाहौर नगर चले गये तो आप की माता भानी जी कुछ दिनों के लिए अपने मायके गोईदवाल चली गई। वहाँ उनके स्वास्थ्य में विकृति आ गई। आप जी का बहुत उपचार किया गया किन्तु आप जी पुन: पूर्ण रूप से स्वास्थ्य लाभ नहीं उठा सकी। इस पर उन्होंने अपना अन्तिम समय निकट जानकर गुरूदेव जी को लाहौर से लौट आने का संदेश भेजा। संदेश प्राप्त होते ही गुरूदेव जी गोईदवाल लौट आये। प्रिय पुत्र के लौटने पर माता जी ने सन्तोष व्यक्त किया और कहा - मैं यह शरीर त्यागने के लिए तैयार हूँ और उन्होंने गुरुदेव जी की गोद में शरीर त्याग दिया। गुरुदेव जी ने उनकी अंत्येष्टि क्रिया बिना किसी क्रम-काण्ड के सहज रूप में सम्पन्न कर दी। गुरूदेव अभी तेरहवीं के लिए गोईदवाल में ही थे कि सम्राट अकबर पँजाब का दौरा पूर्ण करके वापिस लौटते हुए गोईदवाल ठहरा। जब उसे मालूम हुआ कि श्री गुरू नानक देव जी के पाँचवे उत्तराधिकारी श्री गुरू अर्जुन देव इन दिनों गोईदवाल में ही हैं तो वह दर्शनों को चला आया।

श्री गुरू अर्जुन देव जी ने सम्राट का भव्य स्वागत किया। सम्राट ने एक सुन्दर 34 वर्ष के युवक को गुरू रूप में देखा तो उसके हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि मैं कुछ आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा सुनुं। अत: उसने विनती की कि आप मुझे आध्यात्मिक ज्ञान देकर कृतार्थ करें। इस पर गुरूदेव ने उसे स्वरचित वाणी 'सुखमनी साहब' के कुछ अंश सुनाए। सुखमनी के पद्य सुनकर अकबर आत्मविभोर हो उठा। उसने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा - जैसा सुना था, वैसा ही पाया है। जाते समय वह गुरूदेव से अनुरोध करने लगा - मुझे आप कुछ सेवा बतायें। गुरूदेव जी ने समय उचित देखकर सम्राट से कहा - जैसा कि हम सभी जानते हैं कि सूखा पड़ने के कारण किसान लोग बहुत कष्ट में हैं। अत: इस वर्ष का लगान माफ कर देना चाहिए। सम्राट कुछ उलझन में पड़ गया परन्तु वह गुरूदेव जी के व्यक्तित्त्व के सामने झुक गया और उसने कहा

- जब आप अकाल पीड़ितों के लिए निष्काम लंगर लगा सकते हैं तो मैं इतना भी नहीं कर सकता। उसने तुरन्त आदेश दिया कि लाहौर के सूबेदार मुर्तजा खान को सूचित करो कि पँजाब के किसानों का इस वर्ष का लगान क्षमा कर दिया गया है। यह घटना सन् 1597 ईस्वी की है।

पण्डित विश्वम्बर दत्त जी

श्री गुरू अरजन देव जी के दरबार में एक विश्वम्बर दत्त नामक पण्डित जी अपने पुत्र सहित कांशी नगर से पधारे। गुरूदेव ने उन्हें एक विद्वान जान कर आदर दिया। पण्डित जी ने गुरूदेव से निवेदन किया उन्हें अपने यहां कुछ दिन शास्त्रों की कथा करने का अवसर प्रदान करें। गुरूदेव ने तुलांत्मिक दृष्टि से संगतो को ज्ञान मिले इस विचार से अनुमति प्रदान कर दी। पण्डित जी नित्य प्रति गरूड़ पुराण की कथा करने लगे। संगत मे अधिकांश जनसमुह प्रतिदिन गुरुमति विचारधारा का ज्ञान श्रवण करते थे उनको पण्डित जी द्वारा सुनाई जा रही कथा गुरुमति विरोधी और अविज्ञानिक लगी। कई सिख तो कथा के प्रसंगो पर अनेकों संशय व्यक्त करते और कई असमान्य संदर्भो पर हँस देते। इस पर पण्डित जी खीज उठते किन्तु उनके पास सिखों के तर्को का कोई उचित उत्तर तो होता नहीं था बस वह केवल यह कह कर संगत को सांत्वाना देने का असफल प्रयास करते कि शास्त्रों की बातों पर शंका व्यक्त करना उचित नहीं इनको सत्य-सत्य कहकर मान लेना चाहिए।

पण्डित विश्वम्बर दत्त जी सिखों के विवेक पूर्ण तर्को के सामने टिक नहीं सके और परिहास का कारण बन गये। विवश होकर उन्होंने गरूड़ पुराण की कथा बीच में ही समाप्त कर दी और गुरूदेव से निवेदन करने लगे मुझे आज्ञा दें कि मैं अपने निवास स्थान कांशी से कुछ अन्य ग्रथं मंगवा लू और उनकी कथा प्रारम्भ करू जिससें यहां कि स्थानीय संगत संतुष्ट हो जाएंगी। गुरूदेव ने आज्ञा दे दी। पण्डित जी ने अपने पुत्र पिताम्बर दत्त को कांशी भेजने के लिए तैयारी आरम्भ कर दी। उसने गुरूदेव से रास्ते के खर्च के लिए भारी राशी ली और शुभ मुहर्त निकाल कर सभी प्रकार के पूजा-पाठ इत्यादि किये फिर वह अपने पुत्र को नगर के बाहर छोड़ने चले गये। रास्ते में एक गधा हिन-हिना पड़ा। पण्डित जी ने इस बात को अपशगुन मान लिया और बाप-बेटा दोनों लोट आये।

पण्डित जी का लड़का रास्ते में से ही लोट आया है यह जानकर गुरूदेव ने पण्डित से इस का कारण पुछा? पण्डित जी ने बताया कि मैंने तो समस्त गृह-नक्षत्रों का ध्यान रखकर शुभ मुहर्त निकाला था किन्तु रास्ते मे एक गधे के हिन-हिनाने से अपशगुन हो गया अत: हम लोट आये। यह स्पष्टीकरण सुनकर संगत में हंसी फैल गई और मारे हँसी के सभी लोट-पोट होने लगे। इस पर गुरूदेव ने पण्डित जी से पूछा - एक गधे का हिन-हिनाना अधिक महत्त्वपूर्ण और बलशाली है। तुम्हारे शुभ-मुहर्त के पूजा-पाठ से? एक गधे का हिन-हिनान एक सहज क्रिया है क्या वह पूजा-पाठ की शक्ति को काट सकता है? यदि तुम्हें अपने पूजा-पाठ पर इतना भी भरोसा नहीं तो तुम्हारी सुनाई कथा पर किसी का क्या भरोसा बन्धेगा। इस प्रश्न का उत्तर पण्डित जी को नहीं सूझा वह अपना सा मुंह लेकर बैठ गया। गुरूदेव ने संगत को सम्बोधन किया और कहा - गुरू नानक देव जी का पंथ इन निअर्थक कर्म-काण्डों से उपर उठ कर है। आओ! तुम्हें उसका एक व्यवहारिक रूप दिखाएं। उन्होनें तुरन्त एक सिख को बुलाया और उसे आदेश दिया कि आप संगला दीप (श्री लंका) जाओं, वहां पर श्री गुरु नानक देव जी की एक पुस्तक हैं। जोकि हमें बाबा बुड्ढ़ा जी ने बताई है कि वहां के स्थानीय बौद्ध भिक्षुकों के साथ गोष्टी के रूप में संगृह की गई है। उसे ले आओं। सिख ने तुरन्त गुरूदेव को कहा - सत्य वचन, मैं अभी जाता हूँ और वह शीश झुका कार प्रस्थान करने लगे। किन्तु गुरूदेव ने पूछा रास्ते के लिए कोई खर्च इत्यादि की आवश्यकता हो तो बताओं। सिख ने उत्तर दिया आप का आर्शीवाद साथ में है। जहां भी मैं पहुँचुगां वहां मुझे आपके सिख हर प्रकार की सहायता करेंगे। आपके शिष्य समस्त भारतवर्ष में फैले हुए जो हैं। गुरूदेव ने उन्हें आशिष देकर विदा किया।

गुरूदेव का यह विशेष दूत लगभग तीन माह में संगला दीप पहुंच गया। जब वहां के स्थानीय नरेश को मालुम हुआ कि श्री गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी श्री गुरू अरजन देव जी ने श्री गुरू नानक देव के संबंध में लिखी गई पुस्तके मंगवाई है तो उसने सिख का हार्दिक स्वागत किया और अति सत्कार में कोई कोर-कसर नहीं रहने दी। संगला दीप के तत्कालीन शासक ने अपने सभी पुस्तकालयों में जाचं करवाई किन्तु नानक देव जी द्वारा की गई गोष्टि नहीं मिली वह कहीं गुम हो चुकी थी। अंत में नरेश ने बौद्ध भिक्षुकों द्वारा रचित एक पुस्तक सिख को दे दी जिसका नाम प्राण संगली था। इस पुस्तक मे बौद्ध भिक्षुकों द्वारा प्राणयाम करने की विधियां इत्यादि लिखी थी। वह पुस्तक देकर नरेश ने सिख को विदा किया और श्री गुरु अरजन देव जी के नाम एक पत्र दिया जिस में उसने क्षमा याचना की थी कि वह आप की धरोहर (इमानत) को सुरक्षित न रख सका इसलिए उसे खेद है।

सिख, वह पुस्तक लेकर लगभग छ: माह में लोट आया। गुरूदेव ने वह पत्र पढ़ा और उस पुस्तक को जाचा तो पाया यह रचना श्री गुरू नानक देव जी की विचार धारा के विपरीत है अत: इस का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं। इस पर उस पुस्तक को गुरूदेव ने अग्नि भेंट कर दिया और उसकी राख ब्यासा नदी में जल प्रवाह करवा दी।

आदि बीड़ (ग्रन्थ साहब) का संकलन

श्री गुरू अर्जुन देव जी के दरबार में कुछ श्रद्धालु सिक्ख उपस्थित हुए और वे विनती करने लगे कि गुरूदेव जी ! आप द्वारा रचित अथवा पूर्व गुरूजनों द्वारा रचित वाणी जब हम पठन करते हैं तो मन को बहुत शान्ति मिलती है परन्तु इसके विपरीत आपके भ्राता श्री पृथ्वीचन्द अथवा उनके सुत्र मिहरबान द्वारा रचित काव्य मन को चँचल कर देते हैं अथवा अभिमानी बना देते हैं। उसका क्या कारण है?

यह प्रश्न सुनकर गुरूदेव गम्भीर हो गये और कुछ समय मौन रहने के पश्चात् उत्तर दिया। तीसरे गुरू अमरदास जी इस बात का निर्णय समय से पहले ही कर गये हैं। उनका कथन है कि जो मनुष्य अपने अस्तित्व को मिटा दे और उस प्रभु में अभेद हो जाए अर्थात सत्य में समा जाये, तद्पश्चात वह अपने अनुभव अथवा ज्ञान जिज्ञासुओं को दे, भले ही वह ज्ञान पद्य अथवा गद्य में हो। यह अनुभव ज्ञान उस असीम प्रभु मिलन से उत्पन्न होता है, इसलिए यह जन-साधारण का कल्याणकारी बन जाता है। इसके विपरीत जो मनुष्य केवल स्वांग रचकर गुरू डंम का आडम्बर करते हैं अथवा तृष्णाओं से ग्रस्त रहते हैं अर्थात मन पर विजय प्राप्त नहीं करते, उनके द्वारा रचित काव्य अथवा उपदेश श्रद्धालुओं पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं डालते क्योंकि उनकी कविता केवल अनुमान पर आधारित होती है, अनुभव ज्ञान पर नहीं। अत: गुरूदेव ने उनकी रचनाओं को कच्ची वाणी बताया है और कहा है कि वह स्वयँ कच्चे लोग हैं, इसलिए परिपूर्ण परब्रह्म परमेश्वर की क्या स्तुति करेंगे?

सति गुरू बिना होर कची है वाणी।
वाणी त कची सतिगुरू बाझहु होर कची बाणी।
कहदे कचे सुणदे कचे कची आखि वखाणी।

यह उत्तर सुनकर श्रद्धालु सिक्ख सन्तुष्ट हो गये, परन्तु उन में से एक ने कहा - गुरूदेव ! हम जन-साधारण लोग, कच्ची और पक्की वाणी में कैसे भेद करेंगे? उस समय पास में भाई गुरूदास जी बैठे थे। उन्होंने गुरूदेव जी से आज्ञा प्राप्त कर इस प्रश्न का उत्तर दिया - वह कहने लगे - जैसे कि बहुत से पुरूष किसी कमरे में बैठे वार्तालाप कर रहे हों, दूसरे कमरे में बैठी स्त्रियाँ अपने अपने पतियों की आवाज पहचानती हैं, ठीक इसी प्रकार गुरू सिक्ख अपने गुरू की वाणी को पहचान जाते हैं। इस पर जिज्ञासु सिक्खों ने संशय व्यक्त किया और कहा - आप ठीक कहते हैं। परन्तु भविष्य में साधारण जिज्ञासु भ्रमित किये जा सकते हैं, क्योंकि आपका भतीजा मिहरबान कुछ कवियों की सहायता प्राप्त कर वाणी रचने का प्रयास कर रहा है। वास्तव में वह आप की छत्र-छाया में रहने से गुरमति सिद्धान्तों को भी जानता है। अत: उसका किया गया छल किसी समय बहुत बड़ा धोखा कर सकता है क्योंकि वह अपनी कच्ची वाणी में 'नानक' शब्द का प्रयोग कर रहा है।

गुरूदेव जी इस विषय पर बहुत गम्भीर हो गये और कहने लगे कि बहुत समय पहले जब मैं लाहौर अपने ताऊ श्री सिहारीमल जी के आग्रह पर उनके बेटे के शुभ विवाह पर गया हुआ था। तब मुझे वहाँ के स्थानीय पीरों फकीरों से मिलने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ था और उनकी निकटता प्राप्त करने के पश्चात् हमारे हृदय में यह इच्छा उत्पन्न हुई थी कि एक ऐसा आध्यात्मिक ग्रन्थ दुनिया में रचा जाना चाहिए जो बिना भेदभाव के समस्त मानव समाज के लिए कल्याणकारी हो। अब वह समय आ गया है। अत: हमें तन, मन और धन से इस ओर जुट जाना चाहिए।

गुरूदेव जी ने अपने हृदय की बात प्रमुख शिष्य-भाई गुरदास जी, बाबा बुड्ढा जी तथा भाई बन्नों जी इत्यादि को बताते हुए कहा - अब हरिमन्दिर साहब तैयार हो चुका है, जैसे कि आपसभी जानते ही हैं। हमारा इष्ट निराकार पारब्रह्म परमेश्वर है अर्थात हम केवल ब्रह्मज्ञान के उपासक हैं और उसी की पूजा करते हैं। अत: हम चाहते हैं कि हरि मन्दिर के केन्द्र में केवल और केवल उस सच्चिदानंद परमपिता परमेश्वर की ही स्तुति हो। इसलिए उन महापुरूषों तथा पूर्व गुरूजनों की वाणियों का संग्रह करके एक विशेष ग्रन्थ की सम्पादना करनी चाहिए, जो प्रभु में एकमय हो चुके हैं अथवा उस से साक्षात्कार कर चुके हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि ऐसे निरपेक्ष ग्रन्थ के अस्तित्त्व से समस्त भक्तजनों को जहाँ सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा मिलेगी, वहीं इन वाणियों के पठन-पाठन एवँ श्रवण से समस्त मानव समाज के जिज्ञासुओं का उद्धार होगा।

यह सुझाव भाई गुरदास जी, बन्नों जी, बाबा बुड्ढा जी इत्यादि समस्त सिक्खों को बहुत पसन्द आया। सचमुच यह विचार ही अलौकिक और अभूतपूर्व था। उन्होंने तत्काल गुरूदेव जी के सुझाव अनुसार एक विशेष स्थान का निर्माण प्रारम्भ कर दिया, जहाँ एकान्त में बैठ कर नये ग्रन्थ की सम्पादना की जा सके। इस कार्य के लिए भाई बन्नों जी ने अपनी सेवाएं गुरूदेव जी को समर्पित की। पहले उन्होंने पेयजल अथवा स्नान इत्यादि के लिए जल की व्यवस्था करने के लिए एक ताल बनवाया, जिसका नाम रामसर रखा। इस सरोवर के किनारे तम्बू लगाये गये। इस बीच गुरूदेव स्वयँ सामग्री जुटाने में व्यस्त हो गये। कागज़, स्याही इत्यादि प्रबन्ध के पश्चात् उन्होंने अपने पूर्व गुरूजनों की वाणी जो कि उन्हें धरोहर के रूप में पिता गुरूदेव श्री गुरू राम दास जी से प्राप्त हुई थी, अमृतसर से रामसर के एकान्तवास में ले आये। जब सब तैयारी सम्पूर्ण हो गई तो आपने ग्रन्थ को प्रारम्भ करने के लिए संगत जुटाकर प्रभु चरणों में कार्य सिद्धि के लिए प्रार्थना की और प्रसाद बाँटा, तभी सँगत में से एक सिक्ख ने सुझाव दिया कि ग्रन्थ का मंगला चरण किसी महान विभूति से लिखवाया जाना चाहिए। गुरूदेव जी ने यह सुझाव तुरन्त स्वीकार कर लिया। अब समस्या यह उत्पन्न हुई कि वह महान विभूति कौन है, जिस से यह कार्य प्रारम्भ करवाया जाये। बहुत सोच विचार के पश्चात् संगत में से प्रस्ताव आया कि आप अपने मामा मोहन जी से ग्रन्थ में मंगला-चरण लिखवाये क्योंकि वह आप के नाना, पूर्व गुरूजन के सुपुत्र हैं तथा वह एक महान तपस्वी भी हैं। गुरूदेव जी ने सहमति प्रकट की और उनको रामसर आने का न्यौता बाबा बुड्ढा जी तथा भाई गुरूदास जी के हाथ भेजा।

जब गुरूदेव जी का यह प्रतिनिधि मण्डल गोईदवाल बाबा मोहन जी के गृह पहुँचा तो वह उस समय पदम् आसन में प्राणायाम के माध्यम से तपस्या में लीन थे। उनकी समाधि किसी ने भी भंग करनी उचित नहीं समझी। अत: सभी लौट आये। इस पर गुरूदेव जी स्वयँ उनको आमन्त्रित करने के लिए गोईदवाल पहुँचे। जब उन्होंने भी पाया कि बाबा मोहन जी की सुरति प्रभु चरणों में जुड़ी हुई है तो उन्होंने युक्ति से काम लिया। वह जानते थे कि श्री मोहन जी कीर्तन के रसिया हैं। वह प्रभु स्तुति सुनकर अवश्य ही चेतन अवस्था में लौट आयेंगे। अत: उन्होंने प्रभु स्तुति में अपने प्रतिनिधि मण्डल सहित कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। कीर्तन की मधुर धुनों से बाबा मोहन जी की समाधि उत्थान अवस्था में आ

गई। वह संगीतमय वातावरण देखकर अति प्रसन्न हुए और प्रभु स्तुति सुनकर मंत्रमुग्ध हो गये। उन्होंने अपने भांजे श्री गुरू अर्जुन देव को आशीष दी और कहा – बताओ, क्या चाहते हो? गुरूदेव जी ने अपने आने का प्रयोजन बताते हुए कहा – हमने निर्णय लिया है कि एक ऐसे ग्रन्थ की सम्पादना की जाए, जिसमें पूर्व गुरूजनों के अतिरिक्त उन महापुरूषों अथवा भक्तजनों की बाणी भी संग्रह की जाए जो केवल एकेश्वर को भजते थे और जिन्हें उस परम ज्योति का साक्षात्कार हुआ है। जिससे समस्त मानव समाज का कल्याण हो सके। अत: हम चाहते हैं कि इस ग्रन्थ का मंगला चरण आप लिखें। उत्तर में बाबा मोहन जी ने कहा – आप का आशय तो बहुत ही उत्तम है किन्तु जब हम से भी बुजुर्ग यहाँ मौजूद हों तो यह कार्य मुझे शोभा नहीं देता। अत: आप श्री गुरू नानक देव जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री चन्द जी के पास जाओ। बात में तथ्य था। इसलिए गुरूदेव जी ने तुरन्त सुझाव स्वीकार कर लिया परन्तु विनती की कि आप भी अपनी वाणी इस ग्रन्थ के लिए हमें दें। इस पर बाबा मोहन जी ने उत्तर दिया – जैसा कि आप जानते ही हैं कि आपके नाना गुरू अमर दास जी की रचनाओं को हमारे भतीजे संतराम जी लिपिबद्ध किया करते थे। उन्होंने अपने भाई श्री सुन्दर जी की बाणी संग्रह की हुई है, जो उन्होंने अपने दादा श्री गुरू अमर दास जी के देहावसान पर उच्चारण की थी। यदि आप चाहते हैं तो उन से मिले और वह बाणी एकत्र कर लें। गुरूदेव सत्य वचन कह कर श्री सुन्दर जी से मिले और उनसे उनकी रचनाएं प्राप्त कर ली।

गुरूदेव जी बाबा मोहन जी के सुझाव को ध्यान में रखते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गोईदवाल से बाबा श्री चन्द जी के निवास स्थान गांव बारठ के लिए प्रस्थान कर गये। वहाँ उन्होंने बाबा श्रीचन्द जी को अपने आने का प्रयोजन बताया। श्रीचन्द जी प्रयोजन सुनकर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने श्री अर्जुन देव जी से आग्रह किया कि आप कृपया अपनी रचनाएं सुनाएं। इस पर गुरूदेव जी ने 'सुखमनी साहब' शीर्षक वाली रचना सुनानी प्रारम्भ की। श्री चन्द जी 'सुखमनी साहब' के पठन के मध्य में ही आत्म–विमुग्ध हो गये और उन्होंने कहा – आप की बाणी विश्वभर में आध्यात्मिक जगत में प्रथम स्थान पर मानी जायेगी। भक्तजनों में अति लोकप्रिय होगी और समस्त मानव समाज के लिए हितकारी होगी। इस आशीष के मिलने पर गुरूदेव जी ने उनसे आग्रह किया कि कृपया आप भी अपनी बाणी हमें दें, जो हम उसे इस नये ग्रन्थ में संकलित कर लें। इस पर श्रीचन्द जी ने उत्तर दिया कि आप श्री गुरू नानक देव जी की गद्दी पर विराजमान हैं। यह बाणी रचने का अधिकार केवल आप को ही है क्योंकि आप नम्रता के पुंज हैं। अत: हम आपसे इस कार्य के लिए क्षमा चाहते हैं। इस पर गुरूदेव जी ने श्री चन्द जी से फिर विनम्र आग्रह किया कि आप केवल ग्रन्थ का मंगला चरण अथवा आमुख लिखे। तब श्री चन्द जी ने कलम उठाई और गुरूदेव द्वारा प्रस्तुत कागजों पर मूलमंत्र लिख दिया जो कि श्री गुरू नानकदेव जी की बाणी जपुजी साहब के प्रारम्भ में उस सच्चिदानंद अथवा दिव्य ज्योति की परिभाषा है।

१ ओंकार (   ) सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।

गुरूदेव मंगला चरण लिखवा कर अमृतसर लौट आये और उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भाई बन्नों जी एकान्तवास में एक सरोवर निर्माण कर उसके किनारे शमियाने लगाकर उस शिविर में प्रतीक्षा कर रहे थे। अब गुरूदेव के समक्ष दो लक्ष्य थे –एक दूर प्रदेशों से आई संगत को निवाजणा (सन्तुष्ट अथवा कृत्तार्थ करना) तथा दूसरा था – एकान्तवास में आध्यात्मिक दुनिया को एक नया सरल भाषा में ग्रन्थ उपलब्ध करवाना जो निरपेक्ष, सर्वभौतिक, सर्वकालीन और सर्व मानव समाज के लिए संयुक्त रूप में हितकारी और कल्याणकारी हो।

गुरूदेव जी ने बाबा बुड्ढा जी को आदेश दिया कि आप अमृतसर में ही रहें। वहाँ दूर–प्रदेशों से आई संगतों को निवाजे और हमारी कमी उन्हें महसूस न होने दें। ध्यान रहे कि हमारे एकान्तवास में कोई विघ्न उत्पन्न नहीं होना चाहिए, ताकि हम ग्रन्थ के सम्पादन में एकाग्र हो सके।

गुरूदेव जी ने मुख्य लक्ष्य को ध्यान में रखकर नये ग्रन्थ की सम्पादना के लिए, भाई गुरुदास जी को इस का उत्तरदायित्व सौंपा। भाई गुरुदास जी ने तत्कालीन उत्तरप्रदेश के कई क्षेत्रों में गुरमति प्रचार की सेवा की थी। आप उच्च कोटि के विख्यात विद्वान थे। आप हिन्दी, ब्रज, पंजाबी, फारसी भाषाओं का गहन अध्ययन प्राप्त व्यक्तित्त्व के स्वामी थे। आपने स्वयँ भी बहुत से काव्य रचे थे जो कि आज भी सिक्ख जगत में अति लोकप्रिय हैं। उन दिनों आप जी को गुरूबाणी का श्रेष्ठ व्याख्याकार माना जाता था। कुल मिलाकर यदि यह कहा जाये कि आप काव्य कला, व्याकरण, भाषा, राग विद्या इत्यादि के महान पंडित थे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

श्री गुरू अर्जुन देव जी ने वह समस्त महापुरूषों की बाणी पहले से ही अपने पास संग्रह कर रखी थी, जिनका आशय अथवा सिद्धान्त पूर्व गुरूजनों से मेल खाता था अथवा उनके विचारों में गुरमति सिद्धान्त से कोई प्रतिरोध न था। वैसे श्री गुरू नानक देव जी ने अपने प्रचार दौरों के समय जहाँ अपनी बाणी एक विशेष पोथी में लिखकर सुरक्षित कर ली थी, वहीं वह उन महापुरूषों की बाणी, जिनका आशय गुरूदेव की अपनी बाणी से मिलता था अथवा सैद्धान्तिक समानता थी, अपने पास एक अलग से पोथी में संकलित कर ली थी, जो कि उन्हें समय–समय पर विभिन्न प्रदेश में विचरण करते समय उनके अनुयायियों द्वारा सुनाई गई थी। आप जी ने जब अपना स्थाई निवास करतारपुर बसाया तो वहाँ आप इन पोथियों में संकलित बाणियों का प्रचार किया करते थे। जब आप जी ने अपना उत्तराधिकारी भाई लहणा जी को नियुक्त कर उनको श्री गुरू अंगद देव जी बनाया अर्थात गुरू पदवी देकर दूसरा गुरू नानक घोषित किया तो उन्हें वह समस्त बाणी जो उन्होंने स्वयँ उच्चारण की थी, अथवा अन्य महापुरुषों की रचनाएं एकत्रित की थीं, एक धरोहर के रूप में उनको समर्पित कर दी थी। यह परम्परा इसी प्रकार आगे बढ़ती ही चली गई और अन्त में चारों गुरूजनों की रचनाएं तथा अन्य भक्त, महापुरूषों की बाणी श्री गुरू राम दास जी द्वारा, श्री गुरू अर्जुन देव जी को धरोहर सौंप दी गई थी। जिनको कि इस समय कुछ नियमों के अनुसार क्रमबद्ध करने के लिए भाई गुरदास जी और स्वयँ गुरूदेव एक मन एकचित्त

हो, तैयार बैठे थे।

गुरूदेव जी के समक्ष अब समस्त रचनाओं को नये सिरे से रागों के अनुसार क्रम देने तथा गुरूबाणी के शब्द जोड़ कर एक समान करने का विशाल कार्य था। इसके अतिरिक्त काव्य-छंदो की दृष्टि से समस्त वाणी व वर्गीकरण करना अति आवश्यक लक्ष्य था। यह कार्य जहाँ अति परिश्रम का था, वहीं इसके लिए समय भी बहुत अधिक चाहिए था। अतः आप रात-दिन एक करके इस महान कार्य को सम्पूर्ण करने में समस्त हो गये। आपने उन्हीं रागों का चयन किया जो मन को स्थिर करके शान्ति प्रदान करने में सहायक सिद्ध होते हैं। उन रागों को अपने ग्रन्थ में सम्मिलित नहीं किया, जिनके उच्चारण अथवा गायन से मन चँचल अथवा उत्तेजित होता है। आप जी ने सारी बाणी को 30 रागों में लिखवाया। तीस रागों के क्रमवार नाम इस प्रकार हैं -

श्रीराग, माझ, गउड़ी, आसा, गुजरी, देवगंधारी, बिहागड़ा, बडहंस, सोरठि, धनासरी, जैतसरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावलु, गोंड, रामकली, नट नरायण, माली गउड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भरैउ, बसंत, सारंग, मलार, कानड़ा, कल्याण और प्रभाती।

इस ग्रन्थ में जिन महापुरूषों के पदों का संकलन किया गया, वे इस प्रकार है : -

सर्वप्रथम पूर्वज गुरूजनों की बाणी तद्पश्चात उन की अपनी बाणी, फिर पन्द्रह भक्तजनों की बाणी, उसके बाद ग्यारह भट्ट कवियों की बाणी और अन्त में चार गुरू सिक्खों की बाणी। इस प्रकार 2 कुल जोड़ 34 है कि 35 महान विभूतियों की रचनाओं का यह विशाल ग्रन्थ अस्तित्त्व में आ गया। उन पैंतीस महान विभूतियों के नाम निम्नलिखित इस प्रकार हैं : -

1. श्री गुरू नानकदेव जी, 2. श्री गुरू अंगद देव जी, 3. श्री गुरू अमरदास जी, 4. श्री गुरू राम दास जी, 5. श्री गुरू अर्जुन देव जी।

भक्तजनों के नाम हैं - 6. कबीर जी, 7. नामदेव जी, 8. रविदास जी, 9. फरीद जी, 10. त्रिलोचन जी, 11. वेणी जी, 12. धन्ना जी, 13. जयदेव जी, 14. भीखन जी, 15. सेण जी, 16. सदना जी, 17. पीपा जी, 18. रामानन्द जी, 19. परमानन्द जी, 20. सुरदास जी।

भट्ट कवियों के नाम इस प्रकार हैं - 21. श्री कल्ह सहार, 22. श्री जाल्य, 23. श्री कीरत, 24. श्री सल्ल, 25. श्री भल्ल, 26. श्री नल्ल, 27. श्री भीखां, 28. श्री गयंद, 29. श्री बल्ल और 30. श्री हरिबंस।

इसके अतिरिक्त चार सिक्खों के नाम इस प्रकार हैं - 31. श्री सुन्दर जी, 32. श्री मरदाना जी, 33. श्री सत्ता जी, 34. श्री बलवण्ड जी।

इस प्रकार यह ग्रन्थ 974× 2= 1948 पृष्ठों वाला, विशाल आकार में अस्तित्त्व में आ गया। जिस का नाम आदि ग्रन्थ रखा गया।

नोट : कालान्तर में श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी ने जब अपने सिक्खों को एक विशेष पद्धति द्वारा आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान कर, उनको सिक्ख धर्म का प्रचारक बनाना चाहते थे तो आपने बठिंडा जिले के साबो की तलवंडी नामक स्थल पर गुरूबाणी पठन-पाठन के लिए नये सिरे से आदि ग्रन्थ का भाई मनी सिंह से सम्पादन करवाया और उस में नौंवे गुरू श्री गुरू तेग बहादुर जी की बाणी राग जय जय वन्ती के अन्तर्गत सम्मिलित कर ली और नये ग्रन्थ का आकार घटा कर पृष्ठ संख्या 1430 कर दी। बाकी सामग्री ज्यों की त्यों उस प्रकार रहने दी और उस में कोई भी फेर-बदल नहीं किया। आप जी ने अपने सच खण्ड गमन के समय इसी ग्रन्थ को गुरू पद से अलंकृत किया और ग्रन्थ का नाम 'आदि ग्रन्थ' से 'गुरू ग्रन्थ साहब' करने की घोषणा की।

कुछ भक्तजनों की बाणी अस्वीकार

श्री गुरू अर्जुन देव जी रामसर नामक स्थान पर एकान्तवास में जब आदि ग्रन्थ साहब के सम्पादन का कार्य कर रहे थे तो उन दिनों आप से मिलने के लिए लाहौर नगर के कुछ भक्तजन विशेष रूप से आये। उनका मुख्य आशय था कि वे भी अपनी रचनायें उस नये ग्रन्थ में लिखवा लें, जिसका सम्पादन गुरूदेव जी कर रहे थे। भक्तजनों के आगमन पर गुरूदेव जी ने उन सब का हार्दिक स्वागत किया और कहा - यदि आपकी वाणी हमारे प्रथम गुरूदेव श्री गुरू नानक देव जी की विचारधारा के अनुकूल होगी तो हम उसे अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे अन्यथा ऐसा करना सम्भव न होगा। इस पर भक्तजनों में से श्री कान्हा जी

1. गुरूदेव जी को अपनी रचनायें सुनाने लगे। उन्होंने उच्चारण किया -

मैं ओही रे, मैं ओही रे,
जाको नारद सारद सेवे, सेवे देवी देवा रे।
ब्रह्मा बिशन महेश अराधहि, सभ करदे जां की सेवा रे।

यह पद सुनते ही गुरूदेव जी ने भक्त कान्हा जी से कहा -मुझे क्षमा करें। आपकी यह वाणी स्वीकार नहीं की जा सकती क्योंकि इस रचना में अभिमान का बौध होता है, जबकि गुरू श्री नानक देव जी का दरबार विनम्रता का पुँज है। अतः इस ग्रन्थ में विपरीत विचारधारा को शामिल नहीं किया जा सकता।

2. तद्पश्चात भक्त छज्जू जी ने अपनी वाणी गुरूदेव जी को सुनानी प्रारम्भ की -

कागद संदी पूतली तउ न त्रिया निहार।
इउ ही मार लै जाएगी, जिउं बलोचा की धाड़।

नारी की निन्दा सुनते ही गुरूदेव जी ने कहा - कृपा अपनी यह रचना रहने दें क्योंकि गुरू श्री नानक देव जी के घर में गृहस्थ आश्रम को प्रधानता प्राप्त है। यहाँ पर संयम में रहना सिखाया जाता है।

3. अब भक्त पीलो जी ने अपनी रचना का इस प्रकार उच्चारण किया -

पीलो असां नालो सो भले जंभदियां जो मूए।
ओनां चिकड़ पाव न डोबियां न आलूद भए।

गुरूदेव जी ने स्पष्ट किया कि जन्म-मरण तो प्रकृति का खेल है। हमें उन नियमों से सन्तुष्ट होना चाहिए। यदि हमारी भावनाएं उन नियमों के विरूद्ध होगी तो हम भक्त कदाचित नहीं हो सकते। अत: यह रचना भी गुरू श्री नानक देव जी के सिद्धान्त के समान नहीं है, अत: यह अस्वीकार्य है। उन्हें गुरूमत सिद्धान्तों से अवगत कराते हुए यह रचना सुनाई।

दुखु नाही सभु सुखु ही है रे, ऐके एकी नेतै।
बुरा नहीं संभु भला ही है रे, हार नही सभ जेतै।

अन्त में भक्त शाह हुसैन जी ने अपनी वाणी उच्चारण की -

चुप वे अड़िआ, चुप वे अड़िआ।
बोलण दी नही जाय वे अड़िआ।
सजणा बोलण दी जाय नाही।
अंदर बाहर हिका साई।
किस नूं आरव सुणाई।
इको दिलबर सभि घट रविआ दूजी नहीं कढ़ाई।
कहै हुसैन फकीर निमाणा, सतिगुर तो बलि बलि जाई।

गुरूदेव जी ने श्री गुरू नानक देव जी के सिद्धान्त को इस प्रकार सुना कर बताया-

जब लग दुनीआ रहीऐ, किछु सुणीऐ, किछु कहीऐ।

अत: यह रचना भी हम स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि सैद्धान्तिक मतभेद सभी जगह विद्यमान हैं।

इस पर भक्त कान्हा जी गुरूदेव से असहमत हो गये और अपने पक्ष में बहुत सी बातें बताने लगे कि वह पूर्ण पुरूष हैं, किन्तु गुरूदेव जी ने उन्हें अपना दृढ़ निश्चय बता दिया कि वह विरोधी विचारधारा को कभी भी अपने ग्रन्थ में कोई स्थान नहीं देंगे। शेष तीनों भक्तजन शान्त बने रहे और वे गुरूदेव जी के निर्णय पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की और लौट गये। मार्ग में एक दुर्घटना में भक्त कान्हा की मृत्यु हो गई।

भाई बन्नो जी द्वारा तैयार करवाई गई बीड़

भाई बन्नो जी जिला गुजरात पश्चिमी पँजाब की तहसील फालिया के एक गाँव मांगट के निवासी थे। आप जी श्री अर्जुन देव जी के अनन्य सिक्ख थे। जब श्री गुरू अर्जुन देव जी आदि बीड़ साहब की सम्पादन का कार्य करवा रहे थे तो उन दिनों भाई बन्नों जी की नियुक्ति सभी प्रकार की देखरेख व आवश्यक सामग्री जुटाने की थी। जब गुरूदेव जी ने महसूस किया कि लगभग नया ग्रन्थ तैयार होने वाला है तो उनके समक्ष एक ही प्रश्न था कि नये ग्रन्थ को श्री हरि मन्दिर में प्रकाशमान करने के पश्चात् इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि तैयार करना असम्भव हो जायेगा। अत: समय रहते ही इस कार्य को भी साथ साथ कर लेना चाहिए। उन्होंने अपने हृदय की बात भाई बन्नो जी को बताई तो उन्होंने तुरन्त उन लिखने वालों को एकत्रित किया जो गुरूवाणी के गुटके अथवा पोथियां लिखकर संगतों में वितरण किया करते थे। इन लोगोंने ने इस कार्य को अपनी जीविका का साधन बनाया हुआ था। पुरातन ग्रन्थों में इन की संख्या 12 बताई गई है। गुरूदेव जी ने, ग्रन्थ के वह भाग जो पूर्ण हो चुके थे, लिखने के लिए उन लोगों में बाँट दिये और प्रतिलिपि तैयार करने की आज्ञा दी। इन सभी लोगों ने यह कार्य लगभग डेढ़ मास में सम्पूर्ण कर दिया। जैसे ही मुख्य ग्रन्थ आदि बीड़ का कार्य सम्पन्न हुआ। गुरूदेव जी ने भाई बन्नो जी को आदेश दिया कि इन दोनों ग्रन्थों को लाहौर ले जाये और वहाँ से इनकी जिल्द बनवा कर लाये। भाई बन्नो जी ने ऐसा ही किया। जब जिल्द का कार्य करवा कर वापिस लौटे तो मुख्य बीड़ को गुरूदेव जी ने हरि मन्दिर में प्रकाशमान करवा कर बाबा बुड्ढा जी को गुरू घर का प्रथम ग्रन्थी नियुक्त किया और दूसरी बीड़ जो कि 12 लिखारियों द्वारा लिपिबद्ध की गई थी, जाँचा तो उन्होंने पाया कि लिखारियों ने कुछ पद अपनी ओर से इसमें सम्मिलित कर दिये जो मूल ग्रन्थ में उन्होंने नहीं लिखवाये थे। इस बात को लेकर गुरूदेव जी बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने संगत को सतर्क किया कि इस प्रकार यदि मूल वाणी से खिलवाड़ किया गया तो वह समय जल्दी आ जायेगा जब वाणी की प्रमाणिकता ही समाप्त हो जायेगी। अत: हम इस भाई बन्नो वाली बीड़

को मान्यता ही प्रदान नहीं करते ताकि आइंदा कोई ऐसी मनमानी हरकत न कर सके। आप जी ने वाणी में मिलावट को शुद्ध दूध में क्षार मिलाने वाली करतूत बताया। इस प्रकार भाई बन्नों वाली बीड़ का नाम खारी बीड़ पड़ गया।

श्री हरिमन्दिर साहिब में आदि बीड़ (गुरू ग्रन्थ) साहब का प्रकाश

जब आदि बीड़ के सम्पादन अथवा लिखाई का कार्य सम्पूर्ण हो गया तो मंसदों (मिशनरियों) द्वारा आसपास के क्षेत्रों में गुरूदेव जी ने संदेश भिजवाये कि हम गुरूवाणी के नये ग्रन्थ का भादों की पहली कृष्ण पक्ष संवत 16 61 तदानुसार 30 अगस्त 1604 ईस्वी को विधिवत् प्रतिष्ठित करेंगे। अत: समस्त संगत उपस्थित हो। तभी आप जी ने भाई बन्नो जी को लाहौर भेजा कि वह मूलग्रन्थ तथा उसकी प्रतिलिपि की जिल्द बनवाकर लाये। भाई बन्नो जी ने ऐसा ही किया और समय अनुसार रामसर लौट आये। तब गुरूदेव जी ने बाबा बुड्ढा जी के सिर पर मूल ग्रन्थ को उठवाकर नगें पाँव पैदल अमृतसर चलने का आदेश दिया और स्वयँ पीछे पीछे चंवर करते हुए चलने लगे। समस्त संगत ने हाथ में साज लिये और साथ साथ शब्द गायन करते हुए गुरूदेव जी का अनुसरण करने लगे। इस प्रकार वे आदि बीड़ की मूल प्रति को रामसर से अमृतसर श्री हरिमन्दिर साहब में ले आये। गुरूदेव जी ने हरिमन्दिर के केन्द्र में आदि बीड़ की स्थापना करके बीड़ को प्रकाशमान किया और स्वयँ एक याचक के रूप में बीड़ के सम्मुख खड़े होकर अरदास (प्रार्थना) की। तद्पश्चात बाबा बुड्ढा जी से कहा कि आदि बीड़ (ग्रन्थ साहब) के लगभग मध्य से कोई भी शब्द पढ़े अर्थात वाक ले। बाबा जी ने गुरू आदेश के अनुसार आदि ग्रन्थ साहब से हुक्मनामा लिया –

विचि करता पुरख खलोआ।
वाल न विंगा होइआ। सोरठि, महला 5वां

जब सभी औपचारिकताएं सम्पूर्ण हो गई तो गुरूदेव जी ने समस्त संगत को आदेश दिया कि वे सभी 'आदि ग्रन्थ' के समक्ष नतमस्तक हो और घोषणा की कि यह ग्रन्थ समस्त मानव समाज के लिए संयुक्त रूप में कल्याणकारी है। इस ग्रन्थ में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया है। जो भी मनुष्य हृदय से पढ़ेगा, सुनेगा अथवा विचारेगा, वह सहज ही इस सँसार रूपी भव सागर से पार हो जाएगा। अत: आज से समस्त संगत ने 'गुरू शब्द' के भण्डार 'आदि ग्रन्थ' साहब का हम से अधिक सम्मान करना है क्योंकि यह शरीर तो नाशवान है और समय की सीमाओं में बँधा है किन्तु 'शब्द गुरू' देश, काल और शारीरिक आवश्यकताओं से ऊपर है। वास्तव में हमारे में और ग्रन्थ के ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि सिद्धान्त है 'नाम' और 'नामी' व्यक्ति में जैसे कोई अन्तर नहीं होता, ठीक उसी प्रकार 'शब्द रूपी गुरू' दिव्य ज्योति के समान आदर के पात्र है। अत: समस्त संगत आगामी जीवन में 'गुरू शब्द' की ओट ले भले ही गृह में शोक हो अथवा हर्ष हो। आप जी ने अन्त में एक विशेष घोषणा की कि इन दिनों 'आदि बीड़ ग्रन्थ साहब' की सेवा का कार्यभार बाबा बुड्ढा जी पर होगा। जब तक कुछ नये सेवकों को प्रशिक्षित नहीं किया जाता।

दिन भर संगतों का दर्शनार्थ ताँता लगा रहा। रात्रि को बाबा बुड्ढा जी ने गुरूदेव जी से आज्ञा मांगी कि अब इस समय आदि बीड़ को किस स्थान पर ले जाया जाये तो आप ने कहा कि 'ग्रन्थ' का सुखासन स्थान हमारा निजी विश्राम स्थान ही होगा। ऐसा ही किया गया। गुरूदेव जी ने उस दिन से 'आदि ग्रन्थ' की बगल में फर्श पर अपना बिस्तर लगवा लिया और आगामी जीवन में वह ऐसा ही करते रहे।

आदि बीड़ (गुरू ग्रन्थ) साहब की विशेषता

श्री हरि मन्दिर साहब में श्री गुरू अर्जुन देव जी द्वारा गुरूवाणी का भण्डार 'आदि बीड़ साहब' की विधिवत स्थापना कर दी गई है। यह समाचार प्राप्त होते ही श्रद्धालुओं का विशाल जनसमूह दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। श्री गुरू अर्जुन देव जी दरबार सजाते और कीर्तन के पश्चात् प्रवचन करते। आपने श्रद्धालुओं की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए 'आदि बीड़' की विशेषताएँ बताते हुए संगत को सम्बोधन करते हुए कहा – हम लम्बे समय से महसूस कर रहे थे कि भविष्य में उनके अनुयायियों में धार्मिक सिद्धान्तों को लेकर मतभेद कभी भी हो सकता है, अत: हमने इस बात पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अत्यन्त आवश्यक समझा कि समस्त मानवता को एक सूत्र में बांधने के लिए श्री गुरू नानक देव जी द्वारा किये गये मार्गदर्शन के आधार पर एक विशेष नियमावली निश्चित कर दी जाये ताकि कालान्तर में किसी भी प्रकार का भ्रम उत्पन्न ही न हो। जैसे कि आप सभी जानते ही हैं कि कुछ डम्मी गुरू, पूर्व गुरूजनों की वाणी का दुरूपयोग करके व्यक्तिगत लाभ उठा रहे हैं और बाणी के अर्थो का अनर्थ करके स्वार्थ सिद्धि करते हैं। अत: हमने समय रहते पूर्व गुरूजनों तथा उन सभी पूर्ण पुरूषों की बाणी, जिन का आशय एकमात्र निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना ही है, एकत्रित करके एक विशाल ग्रन्थ तैयार कर दिया है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसकी वाणी मानव–मानव में बन्धुत्व उत्पन्न करेगी क्योंकि इस वाणी का मूल उद्देश्य मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता देना है और समस्त विश्व को एक सूत्र में बांधना है। अत: हमारा दृढ़ विश्वास है –

सरब धरम महि सेसट धरमु।
हरि को नामु जपि, निरमल करमु।

गुरूदेव जी ने कहा – जैसे कि सर्वविदित है कि यह वाणी सभी प्रकार के साम्प्रदायिक बंधनों से ऊपर केवल और केवल ब्रह्मज्ञान

है। इसलिए समस्त संगत का ग्रन्थ साहब से गुरू-शिष्य का नाता बनता है। इस वाणी में कोई गीत अथवा कोई कहानी नहीं, यह तो केवल ब्रह्म विचार है। अत: यह सम्पूर्ण वाणी लोक भाषा में संग्रह की गई है। जिससे प्रत्येक श्रेणी अथवा वर्ग के जिज्ञासु स्वयँ अध्ययन करके सीधा लाभ उठा सके। आप इस वाणी में आश्चर्यजनक आधुनिकता पायेंगे जो कि समय की कसौटियों पर खरी उतरेगी क्योंकि इस में सर्वमान्य सत्य तथ्यों पर आधारित सच्चाइयाँ ही सच्चाइयाँ हैं।

आप जी ने कहा - मनुष्य चाहे किसी देश, नस्ल अथवा सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो, भले ही आस्तिक प्रवृत्ति का न होकर नास्तिक ही हो, वह चाहे तो इस आदि ग्रन्थ से मार्गदर्शन पा सकता है, क्योंकि इस ग्रन्थ की वाणी सहिष्णुता से ओत-प्रोत है और किसी भी प्रकार की संकीर्णता को निकट नहीं आने देती - अर्थात इस ग्रन्थ की वाणी में किसी प्रकार के भेदभाव को कोई स्थान नहीं दिया गया। यदि कोई जिज्ञासु भक्तिभाव से इस वाणी का पढ़ेगा, सुनेगा अथवा सुनायेगा तो वह अवश्य ही अपने मन में शान्ति का अनुभव करेगा, जिससे उसका कल्याण होगा।

अन्त में गुरूदेव जी ने घोषणा की कि अन्य सम्प्रदायों के ग्रन्थ उन महापुरूषों ने स्वयँ तैयार नहीं करवाये, वे सभी ग्रन्थें का अस्तित्त्व कालान्तर में उनके अनुयायियो द्वारा किया गया। अत: उनकी प्रमाणिकता पर संदेह किया जा सकता है किन्तु हमने समय रहते स्वयँ गुरमत सिद्धान्तों का मानव समाज के उत्थान के लिए संग्रह वाणी के रूप में सम्पादन करके आदि ग्रन्थ तैयार करवाया है। जिससे भविष्य में गुरूमत सिद्धान्त पर कोई मतभेद उत्पन्न होने की सम्भावना न रहे। इसके साथ ही गुरूदेव जी ने संगत को सतर्क किया कि जैसा कि आप जानते हैं कि आदि बीड़ की प्रतिलिपि तैयार करते समय कुछ लिखने वालों ने मनमानी करते हुए नये ग्रन्थ में कुछ रचनाएं अपनी ओर से भी लिख दी थी जो कि प्रमाणिक नहीं थी अत: वह भाई बन्नो वाला ग्रन्थ स्वीकार्य नहीं है क्योंकि कालान्तर में बहुत से तथाकथित विद्वान ऐसा करना अपना अधिकार समझने लगते हैं। जिससे ग्रन्थ की प्रमाणिकता ही समाप्त हो जाती। इसलिए हम सभी ने वाणी की शुद्धि के लिए सावधान रहना है। जिससे भविष्य में मूल वाणी में कोई परिवर्तन न हो सके।

चन्दूलाल की बेटी की सगाई असफल

दीवानचन्द लाल, बादशाह अकबर के वित्त मंत्रालय में एक अधिकारी था। अत: लोग उस को दीवान जी कह कर सम्बोधन करते थे। चन्दूलाल ने दिल्ली तथा लाहौर नगरों में अपने पक्के निवास के लिए हवोलियाँ बनवाई हुई थी। प्राचीन परम्परा के अनुसार चन्दूलाल ने अपनी लड़की का रिश्ता करने के लिए पुरोहितों को एक सुयोग्य वर ढूँढने की आज्ञा दे रखी थी। इतिफाक से पुरोहितों ने गुरू घर की महिमा सुन रखी थी तो वह अमृतसर आये। जब उन्होंने गुरूदेव के दर्शन किये तो वह गद्‌गद हो गये। उन्होंने श्री अर्जुन देव जी के सुपुत्र हरिगोबिन्द जी को देखा, जो कि उस समय किशोर अवस्था में केवल ग्यारह वर्ष के लगभग थे तो वह उनको निहारते ही रह गये। उनकी सुन्दर छवि पुरोहितों के हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ गई। वह हरिगोबिन्द जी के व्यक्तित्त्व से बहुत प्रभावित हुए। समय मिलते ही पुरोहित ने गुरूदेव के समक्ष अपने हृदय की बात रखी और कहा - मैं आपके सुपुत्र हरिगोबिन्द जी के लिए चन्दू लाल की लड़की का रिश्ता लाया हूँ, वह बेटी भी अति सुन्दर और सुशील है। कृपया यह रिश्ता स्वीकार करें। उत्तर में गुरूदेव ने कहा - ठीक है। स्वीकृति प्राप्त होते ही यह शुभ समाचार लेकर पुरोहित दिल्ली पहुँचा। उसने चन्दूलाल को गुरू घर के वैभव से अवगत करवाया। चन्दूलाल प्रसन्न हुआ किन्तु मीन-मेख निकालने के लिए उस से अपने अभिमानी स्वभाव का परिचय दिया। उसने कहा - हमारा राजसी परिवार है, वह फकीरों का दर है, परन्तु कोई बात नहीं। तुम्हारे कार्य पर हम सन्तुष्ट हैं और उसने यह शुभ समाचार देने के लिए स्थानीय बिरादरी को एक प्रीति भोज पर निमन्त्रण दिया। जिस में नगर के गणमान्य लोग उपस्थित हुए। इनमें से अधिकांश गुरू घर पर अपार श्रद्धा रखते थे। प्रीतिभोज के मध्य में चन्दू शाह ने पुरानी पंजाबी प्रथाओं अनुसार हँसी-मजाक (ठ्ठा) करते हुए कहा - यह पुरोहित भी कैसे हैं? चुबारे की ईट मोरी को लगा दी है। यह वाक्य सुनते ही वहाँ का वातावरण गम्भीर हो गया। गुरू घर के श्रद्धालु सिक्खों ने बहुत आपत्ति की और प्रीति भोज का बहिष्कार कर दिया और वापिस चले आये। उन्होंने तुरन्त आपस में विचार विमर्श कर के गुरूदेव जी को एक पत्र द्वारा सारे वृतान्त की सूचना भेजी और गुरूदेव से अनुरोध किया कि वह इस अभिमानी चन्दूलाल की बेटी का नाता स्वीकार न करें।

जैसे ही गुरूदेव ने दिल्ली की गुरू संगत द्वारा लिखी पत्रिका प्राप्त हुई। उन्होंने तुरन्त उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। जब पुरोहित शगुन लेकर अमृतसर पहुँचे तो गुरूदेव ने उन्हें बताया कि उन को दिल्ली की संगत का आदेश है कि चन्दू ने श्री गुरू नानक देव जी के गृह को तुच्छ बताया है और स्वयँ महान बनता है। अत: इस अभिमानी व्यक्ति का नाता स्वीकार न करें। अत: हम विवश हैं और यह रिश्ता नहीं हो सकता। इस पर पुरोहित ने गुरूदेव को बहुत मनाने की कोशिश की, परन्तु गुरूदेव ने एक ही उत्तर दिया कि हमारे लिए सद्-संगत का आदेश सर्वप्रथम है। जब रिश्ते के अस्वीकार होने की सूचना चन्दू लाल को मिली तो उसे बहुत पश्चाताप हुआ, क्योंकि वह वास्तव में इस रिश्ते से सन्तुष्ट था। किन्तु अब कुछ किया नहीं जा सकता था।

जैसे ही गुरूदेव को पुरोहितों से इन्कार किया। उसी समय सजे हुए दरबार में एक व्यक्ति उठा, जिसका नाम नारायणदास था, विनती करने लगा - हे गुरूदेव ! कृपया आप मेरी पुत्री कुमारी दामोदरी का रिश्ता अपने सुपुत्र श्री हरिगोबिन्द जी के लिए स्वीकार करें। गुरूदेव जी ने उसे अपना परम भक्त जानकर तुरन्त स्वीकृति प्रदान कर दी। भाई नारायणदास जी प्रसिद्ध डल्ला निवासी भाई पारो जी के पुत्र थे।

पृथ्वीचन्द का निधन

श्री पृथ्वीचन्द को जब समाचार मिला कि श्री गुरू अर्जुन देव जी ने अपने बेटे की सगाई दीवान चन्दूलाल की लड़की से करने से इन्कार कर दिया और उसका शगुन लौटा दिया है तो वह एक बार फिर प्रसन्न हो उठा और फिर से सत्ताधारियों की सहायता प्राप्त कर गुरूदेव जी का अनष्टि करने की सोचने लगा। उसने चन्दूलाल को मिलने की योजना बनाई और उसे पत्र लिखा कि वह उस से मिलना चाहता है। कुछ दिनों पश्चात् जब चन्दू लाल सरकारी दौरे पर लाहौर आया तो उसने पृथ्वीचन्द को निमन्त्रण भेजा और विचारविमर्श के लिए आने को कहा। पृथ्वीचन्द सभी ओर से निराश हो चुका था। उसे अब एक और प्रकाश की किरण दिखाई देने लगी थी। जिस की सहायता से वह गुरूदेव का अनिष्ट करना चाहता था।

पृथ्वीचन्द अपने गाँव हेहरां से लाहौर चला तो उसने पेट भरकर भोजन किया और कुछ रास्ते के लिए साथ रख लिया। घर से कुछ कोस चलने पर पृथ्वीचन्द के पेट में तीव्र पीड़ा (शूल) उठी। देखते ही देखते उसे कै(उल्टी) और दस्त होने लगे। शायद भोजन विषैला था। मार्ग में कोई उचित उपचार की व्यवस्था नहीं हो पाई। रोग गम्भीर रूप धारण कर गया। इस प्रकार हैज़े के रोग से ग्रासित होकर पृथ्वीचन्द की जीवन लीला समाप्त हो गई।

जल्दी ही यह सूचना गुरूदेव को भी मिल गई कि आपके बड़े भाई की अकस्मात् मृत्यु हो गई है। वह तुरन्त हेहरां गाँव पहुंचे और भाई की अंत्येष्टि क्रिया में भाग लिया और भाभी व भतीजे मिहरबान को शोक प्रकट किया।

आगरे नगर की संगत

श्री गुरू अरजन देव जी के दरबार में एक दिन आगरा नगर से संगत काफले के रूप में एकत्र होकर पहुंची उन में से अधिकांश भाई गुरदास जी के प्रवचन सुना करते थे किन्तु अब लम्बे समय से भाई गुरदास जी आगरा त्याग कर गुरू चरणों में सेवा रत थे। संगत के मुखी ने गुरूदेव से अनुरोध किया। पहले भाई गुरदास जी हमारी आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान कर देते थे किन्तु अब लम्बी यात्रा करके आपके पास उपस्थित हुए है। कृप्या आप हमारी जिज्ञासाएं शांत करें। इस पर गुरूदेव जी ने उनको सांत्वना दी और कहा – यदि प्रभु ने चाह तो आप सन्तुष्ट होकर ही लोटेगे, आप निश्चिंत रहे! तभी उन अभ्यागतों ने कहना प्रारम्भ किया हमारे समाज में अनेको धारणायें अथवा मान्यताएं प्रचलित है। कोई कहता है : ग्रंथ पढ़ों, कोई कहता है गृहस्थ त्याग कर वनों में तप करो। कोई कहता है तीर्थो का भ्रमण करो, कोई मूर्ति पूजा में विश्वास करता है तो कोइ कर्म–काण्डों में विश्वास रखता है तथा कोई निराकार प्रभु में विश्वास करता है। कृप्या आप ही बताए हमें कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए जिससे हमें प्रभु की निकटता प्राप्त हो सके?

उत्तर में गुरूदेव ने कहा :– प्रभु का सम्बन्ध मन से है शरीर से नहीं, शरीर तो नाशवान है अत: आध्यात्मिक दुनिया में इसका महत्त्व गौण है। हम जो भी धार्मिक कार्य करें उसमें मन–चित का सम्मिलित होना अति आवश्यक है। अत: हमें उस निराकार प्रभु अर्थात रोम में बसे राम–रोम को सुरति सुमिरन से ही आराधना करनी चाहिए। इसके लिए किसी कर्मकाण्ड या आडम्बर रचने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि प्रभु अन्त:करण की शुद्धता पर रीझता है, शरीर की वेष–भूषा पर नहीं। इस बात को दूसरें शब्दों में समझाने के लिए हम आपको इस प्रकार कह सकते है जैसे आपके शरीर की एक पत्नी है जो आप की अर्धागनी कहलाती है। ठीक इसी प्रकार आप अपनी आत्मा का विवाह शुभ गुणों से करें।

जो आपके साथ प्रलोक में भी सहायक बने, जैसे नम्रता, धैर्य, दया तथा अद्वैतवाद इत्यादि। यदि शुभ–गुण आप की आत्मा की अध ागिनी रूप में सहयोगी बन जायेगे तो सहज ही प्रभु की निकटता प्राप्त हो जायेगी।

भाई अजब जी तथा भाई अजायब जी

श्री गुरू अर्जुनदेव जी के दरबार में उनके मसंद (मिशनरी) अपने क्षेत्र से संगतों से 'दसवंध' की राशि एकत्रित करके लाये और उन्होंने वह समस्त धन राशि कोषाध्यक्ष को जमा करवा दी और नये भक्तजनों को गुरूदेव जी से मिलवाया। इस पर गुरूदेव जी ने उनसे पूछा कि भाई अजब व अजायब जी, आप जब दसवंध की राशि को एकत्रित कर लेते हैं तो उस का प्रयोग किस प्रकार करते हैं ? उत्तर में अजब व अजायब ने कहा – हे गुरूदेव ! आपने जैसा कि हमें बता रखा है, गरीब का मुँह, गुरू की गोलक (तिजोरी) समान है तो हम सबसे पहले जरूरतमंदों तथा मोताजों की सहायता करते हैं। तदपश्चात बाकी बचा हुआ धन आपके खजाने में जमा करवाते हैं। तब गुरूदेव जी ने पूछा – आप अपनी आवश्यकताएं किस प्रकार पूरी करते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि हमारी अधिकांश आवश्यकताएं आपके सिक्ख ही पूरी करते हैं, परन्तु रास्ते के खर्च इत्यादि में कुछ अवश्य ही व्यय हो जाता है, किन्तु हम दसवंध का कभी भी दुरूयोग नहीं करते क्योंकि हम जानते हैं कि दसवंध की राशि अपने व्यक्तिगत अथवा स्वार्थसिद्धि के लिए खर्च करना विष के समान है। जिसने भी गुरू की अमानत में से खियानत की, उसकी मति

मलीन हुई है और उसके परिवार का भ्रष्टाचार के कारण पतन ही हुआ है।

यह सुनकर गुरूदेव जी अति प्रसन्न हुए। इस पर उन सिक्खों ने विनती की कि हमें उपदेश दें जिससे हमारा उद्धार हो सके। गुरूदेव जी ने कहा - हमें अपने श्वासों की पूँजी को सफल करते रहना चहिए। वही श्वास हितकारी है। जो उस सच्चिदानंद (वाहेगुरू) की स्तुति गायन अथवा चिन्तन में व्यतीत होता है। बाकी श्वास तो ऐसे जानो जैसे लोहार या ठठिहार की धौंकनियाँ हैं धनार्जन हेतु परिश्रम करते हुए भी वाहेगुरू की याद को न भूलना, यह जप-तप है, इसी को सुरति सुमरिन कहा जाता है। सँसार समुद्र बहुत भयानक है और संशय रूपी जल से भरा हुआ है। इसमें कामादिक, मगरमच्छ, भ्रम के भंवर, कुसंगत इत्यादि की विपरीत दिशा की हवा चल रही है, इसमें केवल सत्संग जहाज है। गुरू उसका खेवट है। यदि प्राणी पर वाहिगुरू की कृपा हो तो सत्संग रूपी जहाज में जगह मिल जाती है। गृहस्थियों के लिए जप तप का उचित समय एकमात्र अमृतबेला है। गुरूवाणी का उच्चारण करना और उस पर आचरण करना ही सच्चा निर्मल मार्ग है। समाज के उत्थान के लिए निष्काम कार्य करना ही ईश्वर की सच्ची आराधना है।

भाई बाला जी व किशना जी

बाला व किशना दो विद्वान गुरू अर्जुन देव जी के अनन्य सिक्ख थे। यह गुरमति का प्रचार करने भिन्न भिन्न स्थानों पर जाते रहते थे और वहाँ गुरू शब्द की व्याख्या बहुत प्रभावशाली ढँग से करते थे। संगत पर इन का गहरा प्रभाव पड़ता था। अधिकांश श्रोतागण इनकी कथा सुनकर मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। इस प्रकार वे गुरू नानक साहब के सिद्धान्तों को जनसाधारण में बहुत सफलतापूर्वक प्रचार कर रहे थे। एक बार वे दोनों गुरूदेव के दर्शनों के लिए अमृतसर आये और उन्होंने गुरूदेव जी के समक्ष याचना की कि हे गुरूदेव जी ! हम जब संगत में गुरू शब्द की व्याख्या करते हैं तो श्रोतागण झूमते हैं और प्रसन्न भी बहुत होते हैं परन्तु हमारे अपने मन में शान्ति नहीं है, हमारे को तृष्णा तथा अन्य विकार समय-समय विचलित करते रहते हैं। मन सदैव स्थिर नहीं रहता, अक्सर डगमगाने लगता है। हम अपने जीवन में परिपक्वता किस प्रकार लायें, कोई उपाय बतायें ? इस पर गुरूदेव जी ने प्रवचन किया कि केवल उज्ज्वल बुद्धि से शान्ति प्राप्त नहीं होती क्योंकि मन चंचल है। जब तक मन पर नियन्त्रण नहीं होता, सफलता नहीं मिल सकती। ध्यान योग्य बात यह है कि मन पर विजय पाना कठिन ही नहीं, असम्भव है किन्तु मन को नियन्त्रण में लाया जा सकता है, उसको धीरे धीरे गुरू उपदेश द्वारा एक विशेष दिशा में ढालो और उसकी चँचल प्रवृतियों पर अंकुश लगा कर सद्कर्मो में व्यस्त रखो, जिससे उसके सँस्कार इतने परिपक्व हो जाएं कि उसको भटकने का अवसर ही न मिले।

जब कभी आप संगत में गुरू शब्द की व्याख्या करें तो जो वृतान्त आये, उसको अपने लिए ही समझो और जैसे दूसरों को दृष्टांन्त समझाने की बुद्धिमता रखते हो, ठीक वैसे ही अपने मन को भी समझाओ।

जिउ मंदर कउ थामै थंमनु
तिउ गुरू का शबदु मनहि असथंमनु।
राग गाउड़ी, महला 5 वां, पृष्ठ 242

सुलतानपुर की संगत

श्री गुरू अर्जुन देव जी के दरबार में सुलतानपुर से संगत गुरू दीक्षा लेने के लिए उपस्थित हुई। इनमें से कुछ संगत के प्रमुख सज्जनों ने गुरूदेव जी के सम्मुख अपनी आध्यात्मिक उलझनों को रखा, वे इन का समाधान चाहते थे। उनमें से अधिकांश की समस्या थी कि वे सभी प्रकार की गुरू मर्यादा निभाते हैं, प्रतिदिन गुरूवाणी का अध्ययन भी करते हैं किन्तु मन में शान्ति नहीं उपजती अथवा जीवन में हर्षोल्लास कहीं दिखाई नहीं देता। हमें क्या करना चाहिए? जिससे तृष्णा मिट जाए और सन्तुष्टि प्राप्त हो।

गुरूदेव जी ने संगत को सांत्वना दी और कहा - जहाँ चाह वहीं राह - जब आपके हृदय में परमेश्वर के साथ एकमेव होने की लालसा उत्पन्न हो गई है तो रास्ते की अड़चने भी धीरे धीरे हटती चली जायेगी। बस धैर्य और विश्वास से प्रभु चिन्तन मनन में सुरति जोड़ने का अभ्यास करते रहना चाहिए। किन्तु सँसार तामसी और राजसी गुणों में फंसा हुआ है, इसलिए मन पर नियन्त्रण नहीं रख पाता। आपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरूवाणी पढ़ते समय सतर्क रहना है। मन को शब्दों के अर्थबोध में लीन रखना है, इस प्रकार वाणी को समझने से विवेक जागृत होता है और शुभ व अशुभ कार्यो का स्वयँ ही ज्ञान होने लग जाता है। यही ज्ञान ही मन को शान्त एकाग्र करने में सहायक बनता चला जाता है।

गुरूदेव जी ने कहा -

त्रिसना बुझै हरि कै नामि।
महा संतोखु होवै गुरबचनी, प्रभ सिउ लागै पूरन धिआनु।
राग धनासरी, महला 5, पृष्ठ 682

यथा

भाई मेरे मन को सुखु
कोटि अनंद राज सुखु भुगवै, हरि सिमरत बिनसै सभ दुखु। रहाउ

कोटि जनम के किलबिख नासहि, सिमरत पावन तन मन सुख।
देखि सरूप पूरनु भई आसा, दरसनु भेटत उतरी भुख।

राग टोडी, महला 5 वां, पृष्ठ 717

भलो भलो रे कीरतनीआ

एक बार श्री गुरू अर्जुन देव जी के दरबार में भाई झंडू, भाई मुकंदा व भाई केदारा जी हाजिर हुए। उन्होंने गुरूदेव जी से पूछा कि हम किस प्रकार का जीवन जियें ताकि हमारा इस जन्म में उद्धार हो सके। पुनर्जन्म की सम्भावना न रहे। इस पर गुरूदेव जी ने कहा – आप सभी राग विद्या के ज्ञाता हैं, इसलिए कीर्तन द्वारा नित्य प्रति प्रभु स्तुति करो। आप ज्यों ज्यों रागों में वाणी गाओगे, प्रेम बढ़ेगा, क्योंकि कीर्तन सुरति एकाग्र करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। जैसे ही सुरति प्रभु चरणों में लीन होती है, सभी प्रकार के विकार मनुष्य को छोड़कर भाग जाते हैं, इसलिए कीर्तन तुल्य कोई तप नहीं, जहाँ कीर्तन करने वालों का कल्याण होता है, वहीं कीर्तन श्रवण करने वालों का भी उद्धार होता है। तात्पर्य यह है कि इस विधि द्वारा दोहरी प्राप्ति होती है, जिसे हम 'आप जपो अवरा नाम जपवाओं' कहते हैं।

इस विधि द्वारा साधना करने में केवल सर्तकता, निष्कामता की ही होनी चाहिए, नहीं तो धन की कामना फल से वंचित कर देती है।

षड्यन्त्र की परिभाषा

विपक्ष को हानि पहुँचाने का एक योजनाबद्ध कार्यक्रम, जिस का रहस्य कोई न जान सके, बल्कि पीड़ित पक्ष किसी अन्य को अपराध ी मानने लग जाये। दूसरे शब्दों में पीड़ित पक्ष गुमराह हो जाता है और वास्तविक अपराधी को न पकड़ कर, शक के आधार पर अथवा भूल से अन्य लोगों को दोषी मानने लग जाता है।

शहीद की परिभाषा

जो मनुष्य लगातार चुनौती देने पर भी अपने आदर्श पर दृढ़ता से डटा हुआ अपने प्राणों की आहुति दे दे अथवा बलिदान हो जाए किन्तु अपनी धारणा में परिवर्तन न लाए, ऐसे बलिदानी पुरुष को शहीद कहते हैं। दूसरे शब्दों में जिस मनुष्य को अपने प्राण सुरक्षित करने के लिए शत्रुओं द्वारा कम से कम एक अवसर प्रदान किया जाए फिर भी वह अपने आदर्शवादी मार्ग को त्याग देने के लिए तैयार न हो, वह शहीद कहलाता है। रणक्षेत्र में युद्धरत सैनिकों पर भी यही सिद्धांत लागू होता है। उन को भी विरोधी पक्ष के सैनिक शस्त्र-अस्त्र डाल देने के लिए विवश करते हैं। अथवा भागने का पूरा अवसर प्रदान करते हैं। किन्तु देश भक्त सैनिक ऐसा न कर, देश के काम आने को ही अपना लक्ष्य मानते हैं। अर्थात् विजय अथवा मृत्यु में से किसी एक की प्राप्ति की कामना ही उनको शहीद का दर्जा देती है।

शहीदी

श्री गुरू अर्जुन देव षड्यन्त्र के शिकार

मुगल शहनशाह (सम्राट) अकबर अपने अन्तिम दिनों में अपने पोते खुसरों को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, जब कि उसका अपना पुत्र शहजादा सलीम (जहाँगीर) जो कि बहुत बड़ा शराबी था, वह भी हर परिस्थिति में सिहांसन प्राप्त करना चाहता था। इसलिए उसने अपने एक विश्वासपात्र, विशिष्ट सैनिक अधिकारी शेख फरीद बुखारी की सहायता से बगावत कर दी। परन्तु इस बगावत में उस को पराजित होना पड़ा। अत: उस के लिए शस्त्र फैंक कर अपने पिता के समक्ष आत्मसर्म्पण करने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता न बचा। उसकी इस भयंकर भूल के कारण उसको कारावास में रहना पड़ा। जहाँगीर की माता ने उसके उद्धारवादी पिता के समक्ष खून के रिश्ते की दुहाई दे कर उसकी इस भयंकर भूल पर भी क्षमा दिलवा दी। अब जहाँगीर ने राजदरबारियों, अधिकारियों तथा मौलवी, काजी इत्यादि को अपने पक्ष में प्रेरित करना प्रारम्भ किया, जिस में उसको बहुत सफलता मिली क्योंकि कुछ कट्टरपंथी लोग उद्धारवादी व्यवस्था के विरूद्ध थे। तब उसके विश्वासपात्र शेख फरीद बुखारी ने उसको पुन: परामर्श देते हुए कहा, केवल सैनिक शक्ति से ही बात नहीं बनेगी जनता में अपना रसूख भी उत्पन्न करना चाहिए। अत: उसने इस कार्या के लिए जहाँगीर की भेंट स्वयं शेख होने के नाते, अपने पीर मुरशाद शेख अहमद सरहिंदी से करवाई। शेख अहमद सरहिंदी को शेख मजहद अलिफ सानी के नाम से भी जाना जाता है। शेख अहमद सरहिंदी पहले से ही राजनैतिक शक्ति प्राप्त किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश में था, जिस के सहयोग से इस्लाम के प्रचार एवं प्रसार को तीव्र गति दी जा सके। अत: समय का पूरा पूरा लाभ उठाते हुए शेख अहमद सरहिंदी तथा शेख फरीद बुखरी जैसे सम्प्रदायिक मुलमानों ने जहाँगीर से एक गुप्त संधि कर ली, जिस के अन्तर्गत वह फकीरी से प्राप्त प्रजा की सहानुभूति से जहाँगीर को (सिहांसन) दिलवायेंगे। जिस के बदले में इस्लाम के प्रचार एवं प्रसार के

लिए जहांगीर को प्रशासनिक बल प्रयोग करना होगा।

उधर जहाँगीर चाहता था कि किसी भी मूल्य पर तख्त को प्राप्त करना चाहिए। अत: इस संधि को दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया। शेख अहमद सरहिंदी को शेख फरीद बुखारी के अतिरिक्त जहाँगीर भी उसे अपना पीर-मुर्शद मानने लगा। इस प्रकार इन दोनों ने जहाँगीर को तख्त दिलवाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। इन लोगों का विश्वास जहाँगीर पर जब दृढ़ हो गया तो शेख अहमद सरहिंदी ने अपनी पीरी के प्रभुसता से अकबर को प्रभावित किया कि वह अपने बड़े शहजादे (राजकुमार) को अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा करे क्योंकि उसका सिहांसन पर अधिकार बनता है। तद्पश्चात समय आने पर खुसरों को स्वयं ही उसका अधिकार मिल जाएगा। इस पर अकबर भी दबाव में आ गया तथा उसने जहाँगीर को राजतिलक दे दिया।

अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर ने शेख अहमद सरहिंदी को बहुत सम्मान देना शुरू कर दिया और तब से सभी सरकारी कार्यो में उसका परामर्श ही आदेश अथवा कानून होता। इस प्रकार धीरे धीरे जहाँगीर एक कठपुतली सा बनकर रह गया तथा शेख अहमद सरहिंदी बेताज बादशाह बन गया। दूसरे शब्दों में सरकार के नीति संगत सभी फैसले शेखअहमद सरहंदी के ही होते जबकि बादशाह जहाँगीर केवल ऐश्वर्य तथा विलासता के कारण शराब में डूबा रहता। ऐसी दशा में शहजादा (राजकुमार) खुसरों ने तख्त प्राप्ति के लिए अपने ही पिता के विरूद्ध बगावत कर दी। इस बगावत को दमन करने का बीड़ा भी उसके जरनैल शेख फरीद बुखारी ने अपने सिर ले लिया तथा सैनिक बल से खुसरों को खदेड़ दिया और काबुल की ओर भागते हुए खुसरों को चिनाव नदी पार करते समय पकड़ लिया गया और जहाँगीर के लाहौर पहुँचने पर उसको मृत्यु दण्ड दे दिया गया।

शेख अहमद सरहिंदी ने खुसरों के इस वृतान्त से अब अनुचित लाभ उठाने की योजना बनाई। जिस के अनुसार उसने इस्लाम के विकास में बाधक, साहिब श्री गुरू अर्जुन देव जी को युक्ति से समाप्त करवाने का विचारबनाया। गुरूदेव पंचम पातशाह जी को खुसरो बगावत काण्ड में जोड़ कर दोष आरोपण किया कि अर्जुन (गुरू) ने खुसरों की सेना को भोजन (लंगर) इत्यादि से सेवा कर सहायता की तथा उसने अपने ग्रंथ में इस्लाम को तौहीन (निन्दा) लिखी है। इस लिए उसको तलब (पेश करना) किया जाए तथा निरीक्षण के लिए अपना नया ग्रंथ भी साथ लाए। इस आदेश के जारी होने पर गुरूदेव ने आदि (गुरू) ग्रंथ साहब एवं कुछ विशिष्ट सिक्खों की देखरेख (सेवा सम्भाल) के लिए साथ लिया और वे खुद लाहौर पहुँच गये। वहाँ पर उन्हें बागी खुसरों को संरक्षण देने के आरोप में बागी घोषित कर दिया तथा दूसरे आरोप में कहा गया कि वे इस्लाम के विरूद्ध प्रचार करते हैं।

इसके उत्तर में गुरूदेव ने बताया कि खुसरो तथा उसके साथियों ने गुरू के लंगर गोइंदवाल (साहब) में भोजन अवश्य किया था किन्तु मैं उस दिनों तरनतारन में था। वैसे भोजन प्राप्त करने गुरू नानक के दर पर कोई भी व्यक्ति आ सकता है। फकीरों का दर होने के कारण वहाँ राजा व रंक का भेद नहीं किया जाता। अत: किसी पर भी कोई प्रतिबन्ध लगाने का तो प्रश्न ही नही उठता। आपके पिता सम्राट अकबर अपने समय पर इस दर पर आये थे और भोजन ग्रहण कर स्वयं को सन्तुष्ट अनुभव किया था।

इस उत्तर को सुनकर सम्राट जहाँगीर सन्तुष्ट हो गया किन्तु शेख अहमद सरहिंदी तथा उसके साथियों ने कहा कि उनके ग्रंथ में इस्लाम धर्म (मजहब) का अपमान क्यों किया है। जब कि उस में हज़रत मुहम्मद साहिब की तारीफ की जानी चाहिए। इस पर गुरूदेव जी ने साथ में आए सिक्खों से आदि (गुरू) ग्रंथ साहब का प्रकाश करवा कर हुक्मनामा लेने का आदेश दिया।

तब जो हुक्म प्राप्त हुआ - वह इस प्रकार है

खाक नूर करिदं आलम दुनिआइ।
असमान जिमी दरखत आब पैदाइस खुदाइ *(1) अंक 723*

यह हुक्मनामा / वाक्या जहाँगीर को बहुत अच्छा लगा परन्तु शेख अहमद सरहिंदी को अपनी बाजी हारती हुई अनुभव हुई और वह कहने लगा कि इस कलाम को इन लोगों ने निशानी लगा कर रखा हुआ है इसलिए उसी स्थान से पढ़ा है। अत: किसी दूसरे स्थान से पढ़ कर देखा जाए। इस पर जहाँगीर ने अपने हाथों से कुछ पृष्ठ पलट कर दाबारा पढ़ने का आदेश दिया।

इस दफा भी जो हुक्मनामा आया, वह इस तरह है।

अबलि अलह नूर उपाइआ कुदरति के सभ बंदे।
एक नूर ते सभु जग उपजिआ कउन भले कउन मंदे। *(अंक 1349)*

इस शब्द को श्रवण कर जहाँगीर प्रसन्न हो गया परन्तु दुष्ट जुण्डली ने दोबारा कह दिया कि यह कलाम भी इन लोगों ने कण्ठस्थ किया मालूम पड़ता है। इस लिए कोई ऐसा (आदमी) व्यक्ति को बुलाओ जो गुरमुखी अक्षरों का ज्ञान रखता हो, ताकि उन से इस कलाम के बारे ठीक पता लग सके।

तब एक गैर-सिक्ख व्यक्ति (आदमी) को बुलाया गया जो कि गुरमुखी पढ़ना जानता था। उसको (गुरू)ग्रंथ साहिब में से पाठ पढ़ने का आदेश दिया गया। उस व्यक्ति ने जब (गुरू) ग्रंथ साहिब से पाठ पढ़ना शुरू किया तब निम्नलिखित हुक्मनामा (वाक) आया।

'बिसर गई सभ ताति पराई जब ते साध संगति मोहि पाई। *(अंक 1299)*

इस हुक्मनामे को सुनकर जहाँगीर पूर्णत: सन्तुष्ट हो गया किन्तु जुण्डली के लोग पराजय मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा ठीक

है परन्तु इस ग्रंथ में हजरत मुहम्मत साहिब तथा इस्लाम की तारीफ लिखनी होगी। इस के उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा कि इस ग्रंथ में धर्म निरपेक्षता तथा समानता के आधार के इलावा किसी व्यक्ति विशेष की प्रशंसा नहीं लिखी जा सकती तथा ना ही किसी विशेष सम्प्रदाय की स्तुति लिखी जा सकती है। इस ग्रंथ में केवल निराकार परमात्मा की ही स्तुति की गई है। जहाँगीर ने जब यह उत्तर सुना तो वह शान्त हो गया। परन्तु शेख अहमद सरहिंदी तथा शेख फरीद बुखारी जो कि पहले से आग बबूले हुए बैठे थे। उनका कहना था कि यह तो बादशाह की तौहीन है और (गुरू) अर्जुन की बातों से बगावत की बू आती है। इसलिए इसको माफ नहीं करना चाहिए। इस प्रकार चापलूसों के चुंगल में फंसकर बादशाह भी गुरूदेव पर दबाव डालने लगा कि उन को उस (गुरू) ग्रंथ (साहिब) में हजरत मुहम्मद साहब और इस्लाम की तारीफ में जरूर कुछ लिखना चाहिए। गुरूदेव ने इस पर अपनी असमर्था दर्शाते हुए स्पष्ट इन्कार कर दिया। बस फिर क्या था। दुष्टों को अवसर मिल गया। उन्होंने बादशाह को विवश किया कि (गुरू) अर्जुन बागी हैं जो कि बादशाह की हुक्म अदुली एवं गुस्ताखी कर उसकी छोटी सी बात को भी स्वीकार करने को तैयार नहीं इसलिए उको मृत्यु दण्ड दिया जाना ही उचित है।

इस तरह बादशाह ने (गुरू जी) पर एक लाख रूपये दण्ड का आदेश दिया और वह स्वयँ वहाँ से प्रस्थान कर सिंध क्षेत्र की ओर चला गया क्योंकि वह जानता था कि चापलूसों ने उससे गलत आदेश दिलवाया है, बादशाह के चले जाने के पश्चात् दुष्टों ने लाहौर के गर्वनर मुर्तजा खान से मांग की कि वह (गुरू) अर्जुन से दण्ड की राशि वसूल करे। गुरूदेव जी ने दण्ड का भुगतान करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया क्योंकि जब कोई अपराध किया ही नहीं तो दण्ड क्यों भरा जाए ? लाहौर की संगत में से कुछ धनी सिक्खों ने दण्ड की राशि अदा करनी चाहिए किन्तु गुरूदेव ने सिक्खों को मना कर दिया और कहा संगत का धन निजी कामों पर प्रयोग करना अपराध है। आत्म सुरक्षा अथवा व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए संगत के धन का दुरुपयोग करना उचित नहीं है।

गुरूदेव जी ने उसी समय साथ में आए हुए सिक्ख सेवकों को आदेश दिया कि वे 'आदि श्री गुरू ग्रंथ साहिब' के स्वरूप की सेवा सम्भाल करते हुए अमृतसर वापस लौट जाएं। गुरूदेव को अनुभव हो गया था कि दुष्ट जुण्डली के लोग, आदि गुरू ग्रंथ साहिब की वाणी में मिलावट करवा कर परमेश्वर की महिमा को समाप्त करने की कोशिश अवश्य करेंगे क्योंकि उनकी इस्लामी प्रचार में लोकप्रिय वाणी बाधक प्रतीत होती थी। वास्तव में वे लोग नहीं चाहते थे कि जन साधारण की भाषामें आध्यात्मिक ज्ञान बांटा जाए क्योकि उनकी तथाकथित पीरी-फकीरी (गुरू डंम) की दुकान की पोल खुल रही थी।

देवनेत ही दुष्ट लोग अपने षड्यन्त्र में सफल नहीं हुए, वैसे अपनी ओर से उन्होंने कोई कोर कसर बाकी नहीं छोड़ी थी। इसलिए किसी नये कांड से पहले (गुरू) ग्रंथ साहिब के स्वरूप को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देना जरूरी था।

बहुत लम्बे समय से मुर्तजा खान लाहौर का गर्वनर चला आ रहा था। अकबर के शासनकाल में जब लाहौर में अकाल पड़ गया था तथा समय समय चेचक, हैजा, प्लेग, गिलटी, ताप इत्यादि बीमारियों के कारण बहुत सा जानी नुकसान हुआ था। उस समय गुरूदेव जी द्वारा जनता की बिना भेदभाव से की गई निष्काम सेवा भाव की मुर्तजा ख़ान देख चुका था, इसलिए गुरूदेव का वहां लोकप्रिय होना तथा सांई मीयां मीर जी की गुरुदेव के साथ घनिष्ट मित्रता भी उस से छिपी हुई नहीं थी। गुरूदेव का वह बहुत बड़ा ऋणी था, क्योंकि सूखा पढ़ने के समय गुरुदेव ने किसानों का लगान सम्राट अकबर से माफ करवा दिया था। जिसके लिए वह भी गुरूदेव का प्रशंसक बन गया था। इसलिए मुर्तजा ख़ान जुण्डली के लोगों से सहमति नहीं रखता था। वह नहीं चाहता था कि उस के हाथों से कोई भयंकर भूल का कार्य हो। अत: वह बहुत बड़ी कठिनाई में था, क्योंकि एक तरफ बादशाह के पीर व मुर्शद का आदेश था, जिसकी स्थिति उस समय किसी बेताज बादशाह से कम न थी और उस से अनबल करने का सीधा अर्थ गवर्नरी को खोना था।

मुर्तजा ख़ान अभी इसी दुविधा में था कि उसकी समस्या दीवान चन्दू लाल ने हल कर दी। चन्दू ने कहा (गुरू) अर्जुन देव को मेरे हवाले कर दो। मुझे उस से अपना पुराना हिसाब चुकता करना है क्योकि उसने कुछ लोगों के कहने में आ कर मेरी लड़की का रिश्ता अपने साहबजादे के लिए अस्वीकार कर दिया है। अब मैं दबाव डाल कर रिश्ते को पुन: स्वीकार कर लेने को उसे विवश कर दूंगा तथा दण्ड की राशि खजाने में यह जानकर जमा करवा दूंगा कि लड़की को दहेज दिया है। मुर्तजा ख़ान इस प्रस्ताव पर तुरन्त सहमत हो गया तथा उसने गुरूदेव को चन्दू लाल के हवाले कर दिया।

उधर चन्दू के मन में विचार चल रहा था कि यह कोई खास कठिन बात नहीं। प्रशासन के भय से (गुरू) अर्जुन उसकी लड़की का रिश्ता स्वीकार कर लेगा तथा उसकी व्यक्तिगत सफलता भी इसी में है कि वह परीक्षा के समय मुर्तजा ख़ान के काम आए। ऐसा करने से उसका अपना भी गौरव बढ़ेगा तथा और अधिक बड़ी पदवी प्राप्त होगी।

इस तरह गुरूदेव जी को वह अपनी हवेली में ले आया तथा कई विधि-विधानों से गुरूदेव को मनाने के प्रयास करने लगा ताकि रिश्तेदारी कायम की जा सके।

इस पर वह अपनी बात कहता हुआ बोला, इस सब में हम दोनों का भला है। आप को प्रशासन के क्रोध से मुक्ति प्राप्त होगी और मेरी बिरादरी में स्वाभिमान रह जाएगा और प्रशासन की ओर से भी प्रशंसा प्राप्त होगी। किन्तु गुरूदेव जी ने उसकी एक नहीं मानी और अपने दृढ़ निश्चय पर अटल रहे। उसके घर का अन्न जल भी स्वीकार न किया। केवल एक ही उत्तर दिया कि उन्हें संगत का आदेश है कि उसकी पुत्री का रिश्ता स्वीकार नहीं करना क्योंकि उसने गुरू नानक देव जी के दर-घर की मोरी (छोटी सी कुटिया) कहा है तथा स्वयं को चौबारा (महल)

का मालिक व्यक्त किया है, लेकिन गुरूदेव को मनाने के लिए चन्दू ने बहुत से उल्टे-पुल्टे हथकडे अपनाए। अन्त मे।वह तरह तरह से धमकी देने लगा किन्तु बात तब भी बनती दिखाई न दी। उसने तंग आ कर सख्त गर्मी के दिनों में गुरूदेव जी को भूखे-प्यासे ही अपनी हवेली के एक कमरे में बन्द कर दिया।

तत्पश्चात रात को एकान्त पा कर, चन्दू की पुत्रवधू (बहू) जो कि गुरू घर की सिक्ख (शिष्य) थी, गुरूदेव के लिए शरबत लेकर उपस्थित हुई तथा विनती करने लगी, कि गुरू जी जल ग्रहण करें तथा उसके ससुर को क्षमा दान दें क्योंकि वह नहीं जानता कि वह क्या अवज्ञा कर रहा है। गुरुदेव ने उसे सांत्वना दी और कहा - पुत्री मैं विवश हूँ, संगत के आदेश के कारण मैं यह जल ग्रहण नहीं कर सकता। प्रात: काल जब सरकारी कर्मचारी (कोतवाल) चंदू के पास हाल जानने के लिए आया तो चंदू ने यह कह कर गुरूदेव जी को उस के हवाले कर दिया कि अर्जुन ने मेरी शर्त नहीं मानी। अत: अब मैं इसको आप के हवाले करने के लिए तैयार हूँ। बस फिर क्या था, सरकारी दुष्टों को निध ारित षड्यन्त्र के अनुसार कार्य करने का अवसर प्राप्त हो गया। उन्होंने चन्दू को तुरन्त अपने विश्वास में लिया और गुरूदेव को अपनी हिरासत में लेकर लाहौर के शाही किले में ले आये। इस तरह शेख अहमद सरहंदी ने परदे की ओट में रह कर शाही काजी से गुरूदेव के नाम फतवा (आरोप) जारी करवा दिया। फ़तवे में कहा गया कि (गुरू) अर्जुन दण्ड की राशि अदा नहीं कर सका। अत: वह इस्लाम कबूल कर ले अन्यथा मृत्यु के लिए तैयार हो जाए। गुरूदेव जी ने तब उत्तर दिया कि यह शरीर तो नश्वर है। इस का मोह कैसा? मृत्यु का भय कैसा? प्रकृति का नियम अटल है जो पैदा हुआ है उसका विनाश अवश्य होना है। मरना जीना परमेश्वर के हाथ में है, इसलिए इस्लाम स्वीकार करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। आपने जो मनमानी करनी है उसे कर डालो। इस पर काज़ी ने इस्लामी नियमावली अनुसार 'यासा' के कानून के अन्तर्गत मृत्यु दण्ड का फ़तवा दे दिया तथा कहा - जैसे दूसरे बाग़ियों को चमड़े के खोल में बंद कर मृत्यु के घाट उतारा गया है, ठीक उसी प्रकार इस बागी (गुरू जी) को भी गाय के चमड़े में मढ़ कर खत्म कर दो। इस से पहले कि गाय का ताजा उतरा हुआ चमड़ा प्राप्त होता, शेख अहमद सरहिंदी ने अपने रचे षड्यन्त्र के अनुसार, गुरूदेव को यातनाएं देकर इस्लाम स्वीकार करवा लेने की योजना बनाई। गुरूदेव जी को उसने किले के आँगन में कड़कती धूप में खड़ा करवा दिया गुरूदेव जी रात भर से ही भूखे प्यासे थे, क्योंकि चंदू के यहाँ उन्होंने अन्न जल स्वीकार नहीं किया था। ऐसे में शरीर बहुत दुर्बलता अनुभव करने लगा था किन्तु वह तो आत्मबल के सहारे अडोल खड़े थे। जल्लाद भी गुरू जी पर दबाव डाल रहा था, 'इस्लाम स्वीकार कर लो, क्यों अपना जीवन व्यर्थ में खोते हो।' परन्तु गुरूदेव जी इस सब कुछ से साफ इन्कार कर रहे थे। दुष्टों ने गुरूदेव को तब डराना-धमकाना प्रारम्भ किया तथा कोष में आकर उनको एक लोह (रोटी बनाने का एक बहुत बड़ा तवा) पर बिठा दिया जो उस समय जेठ माह की कड़ाके की धूप में आग जैसी गर्म थी। लोह (तवी) पर भी गुरूदेव जी अडोल रहे। जैसे कोई आदमी तवे पर नहीं बल्कि कालीन पर विराजमान हो।

गुरूदेव पर हो रहे इस तरह के अत्याचारों की सूचना जब लाहौर नगर की जनता तक पहुँची तो सांई मीयां मीर जी तथा बहुत सी संगत किले के पास पहुँची तो उन्हों पाया कि किले के चारों ओर सख्त पहरा होने के कारण अन्दर जाना असम्भव है। अनुमति केवल सांई मीयां मीर जी को मिल सकी। यातनाएं झेलते हुए गुरूदेव जी को देख कर सांई जी ने आश्चर्य प्रकट किया। तब गुरुदेव ने कहा, 'कि आपने एक दिन ब्रह्मज्ञानी के अर्थ 'सुखमनी वाणी' के अनुसार पूछे थे। मैं आज उन पंक्तियों के अर्थो के अनुरूप जीने का प्रयास कर रहा हूँ। सब कुछ उस प्रभु की इच्छाओं अनुसार ही हो रहा है। किसी पर भी कोई गिला शिकवा नहीं। फकीरों की रमज़ (हृदय की बात) फ़कीरी ने समझी। इस तरह सांई मीयां मीर जी ब्रह्मज्ञान का उपदेश ले कर वापस लौट आए।

गुरूदेव जी पर जब कोई असर न हुआ तो जल्लादों ने एक बार फिर गुरुदेव को चुनौती दी तथा कहा अब भी समय है, सोच विचार कर लो, अभी भी जान बख्शी जा सकती है, इस्लाम स्वीकार कर लो और जीवन सुरक्षितकर लो। गुरूदेव जी ने उनके प्रस्ताव को पुन: अस्वीाकर कर दिया तथा जल्लादों ने गुरूदेव जी के सिर में गर्म रेत डालनी आरम्भ कर दी। सिर में गर्म रेत के पड़ने से गुरूदेव के नाक से खून बहने लगा और वे बेसुध हो गए। जल्लादों ने जब देखा कि उनका काम यासा कानून के विरूद्ध हो रहा है तो उन्होंने गुरुदेव जी के सिर में पानी डाल दिया ताकि यासा के अनुसार दण्ड देते समय अपराधी का खून नहीं बहना चाहिए। सिर में पानी डालने से भी जब कोई परिणाम न निकला तो जल्लादों ने परेशान होकर उनको उबली देग में बिठा दिया।

'ज्यों जलु में जलु आये खटाना त्यों ज्योति संग जोत समाना' के महावाक्य के अनुसार गुरूदेव ने जब शरीर छोड़ दिया तो अत्याचारियों ने इस जघन्य हत्याकाण्ड को छिपाने के लिए गुरूदेव जी की पार्थिव देह को रात्रि के अंधकार में रावी नदी के जल में बहा दिया। इस दुर्घटना को छुपाने के लिए कोतवाल ने दीवान चंदू को तुरन्त बुला भेजा और उसको अपने पक्ष में ले लिया। दीवान चंदू से कहा गया क्योंकि अर्जुन को हमने तुम्हारे यहाँ से हिरासत में लिया था, इसलिए अफवाह फैला कर लोगों को गुराह करें कि गुरूदेव जी ने स्नान करने की इच्छा प्रकट की थी इसलिए वह नदी में बह कर शायद डूब गये अथवा बह गये होंगे। उनका वापस न लौटने का कारण भी यही हो सकता है।

गुरूदेव की इस्लाम स्वीकार करवाने की वास्तविक योजना में शेख अहमद सरहिंदी भले ही विफल रहा किन्तु गुरूदेव जी की शहीदी से वह सन्तुष्ट था, परन्तु इस शहीदी काण्ड के मुख्य जिम्मेवार के रूप में प्रकट हो जाने से बचने के लिए वह प्रयत्न करने लगा। अपने को निर्दोष साहिब करने के लिए उसने कुछ उपाय किये, क्योंकि वह सांई मीयां जी के वहाँ पर आ जाने से घबरा गया था तथा वह देख रहा था कि लाहौर के गवर्नर मुर्तज़ा ख़ान और वहाँ की जनता गुरूदेव पर अथाह श्रद्धा भक्ति रखती है। वास्तव में वह जानता था कि उसके दबाव के कारण ही जहाँगीर न गुरूदेव पर दण्ड लगाया था। दण्ड न चुकता करने की परिस्थिति में तो वह शांत था परन्तु जहाँगीर की चुप्पी को मृत्यु दण्ड की

परिभाषा देने का असल जिम्मेवार तो वह स्वयँ था। उसने स्वयँ को निर्दोष साबित करने के लिए गुरूदेव के शहीद काण्ड को चन्दू की घरेलू शत्रुता से जोड़ दिया। जबकि बाकी रहती जिम्मेवारी से बचने के लिए, उसने 'तुजाकि जहांगीरी' नामक पुस्तक (जो कि जहाँगीर की स्वजीवनी के रूप में प्रसिद्ध है किन्तु वास्तव में वह एक रोजनामचा ही है) में निम्नलिखित इबारत लिखवा दी - 'गोइंदवाल .... यातनाएं दे कर हत्या कर दी जाए'। उन दिनों बादशाह जहांगीर का तथाकथित पीर-मुर्शद, शेख अहमद सरहिंदी था। अत: वह अपने आप को बेताज बादशाह समझता था, इसलिए 'तुजाकि जहांगीरी' में वह अपनी मनमानी बातें लिखवाने का अधिकार समझता था। इबारत लिखवाते समय उसने सावधानी यह रखी कि स्वयँ को निर्दोष (बरी) साहिब कर सके तथा पूरा कीचड़ जहाँगीर पर फैंक सके। जहाँगीर तो वास्तव में इस षड्यन्त्र से अनभिज्ञ था। वह नहीं जानता था कि उससे अनजाने में एक भयंकर भूल करवा कर उसको बदनाम किया जा रहा है।

नोट - मुगलकाल का इतिहास बाबर के समय से ही उनके व्यक्तिगत परामर्शदाता, उनके जीवन, 'वृतान्त' के रूप में लिखते चले आ रहे थे। ये लोग बादशाह के बहुत निकटवर्ती तथा निष्ठावान समझे जाते थे। अकबर नामा भी इसी प्रकार अस्तित्व में आया था क्योंकि अकबर अनपढ़ था। ठीक इसी प्रकार यह प्रथा आगे बढ़ी। 'तुज़ाकि जहाँगीरी' नामक पुस्तक भी जहांगीर के व्यक्तिगत परामर्शदाताओं ने लिखी है क्योंकि जहाँगीर का बहुत अधिक समय शराब और शवाब के चक्कर में व्यर्थ चला जाता था। शेख अहमद सरहिंदी ने अपनी पीरी-फकीरी के बलबूते से लाभ उठाते हुए जहाँगीर के व्यक्तिगत परामर्शदाता को प्रभावित कर उसको अपने विश्वास में ले कर उस से 'तुज़ाकि जहाँगीरी' में अपनी इच्छा अनुसार निम्नलिखित इबारत लिखवा दी।

तुज़ाकि जहाँगीरी नामक रोज़नामचे की इबारत

गोइंदवाल जो, ब्यास नदी के किनारे पर स्थित है, में पीरों बजुर्गो की वेष-भूषा में (गुरू) अरजन नामक एक हिन्दू निवास करता है। सीधे -साधे हिन्दू ही नहीं बल्कि बहुत से मूर्ख तथा अंजान मुसलमानों को भी उसने अपनी जीवन शैली का श्रद्धालु बना कर स्वयं के 'वली' तथा 'पीर' होने का ढोल बहुत ऊँचे स्वर में बजाया हुआ है और वे सभी उसको गुरू कहते थे। सभी स्थानों से समाज विरोधी तत्व वहाँ पहुँच कर उस पर पूरा भरोसा तथा श्रद्धा प्रकट करते थे। तीन-चार पीढ़ियों से उन की दुकान गर्म थी। बड़ी देर से मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हो रहा था कि झूठ की इस दुकान को बन्द करना चाहिए या उस को मुसलमानी मत में ले आना चाहिए।

इन्हीं दिनों खुसरो ने ब्यास नदी पार कर उस के डेरे पर पड़ाव किया। इस जाहिल तथा हकीर खुसरो का इरादा उससे मिल कर सहायता लेने का था। वह उसको मिला तथा निश्चित बातें (गुरू जी को) सुनाई और केसर से अपने माथे पर टीका लगाया जिस को हिन्दू लोग तिलक कहते है तथा शुभ शगुन मानते है। यह बात जब मेरे कानों में पड़ी तब पहले से ही इन के झूठ को अच्छी तरह जानता था। मैंने आदेश दिया कि उस (गुरू जी) को हाजिर किया जाए तथा मैंने उस के घर-घाट और बच्चे मुर्तजा खाँ के हवाले कर दिये और उस का माल असबाब जबत करने का हुक्म दिया कि उस को स्यासत और यासा के कानून अनुसार दण्ड दें।

दीवान चन्दू लाल: बादशाह अकबर के वित्त मंत्रालय में चन्दू लाल नाम का एक अधिकारी था अत: लोग उस को दीवान जी कह कर सम्बोधन करते थे। चन्दू लाल ने दिल्ली तथा लाहौर नगरों में अपने पक्के निवास के लिए हवेलियाँ बनवाई हुई थी। प्राचीन परम्परा के अनुसार चन्दू ने अपनी लड़की का रिश्ता, गुरू अरजन देव जी के सपुत्र (गुरू) हरगोबिन्द जी से पुराहित द्वारा निश्चित कर दिया था।परन्तु उसने झूठे अभियान में एक प्रीती भोज में आकर गुरु- घर की शान के विपरीत कुछ शब्द हंसी उड़ाने के अंदाज में कहे :- "पुरोहित जो आपने चुबारे की ईट मोरी को लगा दी है," वहाँ पर विराजमान सिक्ख संगत ने इस बात पर आपत्ति की तथा गम्भीरता- पूर्वक गुरुदेव जी को संदेश भेज दिया कि अभिमानी चन्दू ने गुरु नानक देव जी के दर-घर को तुच्छ बताया है और स्वयं को बहुत ऊँचा बताया है। बस फिर क्या था। संदेश प्राप्त होते ही गुरू अरजन देव जी ने आये रिश्ते को ठुकरा दिया । किन्तु इस परिणाम की चन्दू को आशा नहीं थी। वास्तव में वह इस रिश्ते से संतुष्ट था। रिश्ता टूटने पर उसके स्वाभिमान को गहरी ठेस पहुँची । वह पश्चाताप में था। इसलिए उसने बहुत प्रयत्न किये कि रिश्ता पुन: स्थापित हो जाए किन्तु गुरूदेव जी नहीं माने। पंजाबी समाज में रिश्ते- नाते टूटने भी रहते है इसलिए ऐसी घटनाओं से लोग एक - दूसरों से रुष्ट हो जाते है किन्तु कोई जानी दुश्मन तो नहीं बनता।

गुरुदेव जी की शहीदी के दिन को कच्ची लस्सी की छबील लगाकर खूब मनाते हैं। सभी भक्तजनों को उस प्रभु का हुक्म मानने के लिए कच्ची लस्सी पिलाई जाती है। जिससे उनकी शहीदी पर कोई विघ्न न डाले।

जब आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिब की रचना गुरु अर्जुन देव जी करवा चुके थे तो उन दिनों गुरुदेव के इस ग्रंथ की दूर-दूर तक प्रसिद्धि फैली हुई थी। इसके कारण गुरुदेव के कटु आलोचक शेख अहमद सरहिंदी ने गुरुदेव के विरूद्ध उस समय के शासक जहाँगीर के पास चुगली कर दी कि अर्जुन देव ने एक ग्रंथ तैयार किया है जिसमें इस्लाम के विरूद्ध बातें कहीं गईं हैं। यह सुनते ही वह आग बबूला हो उठा। तभी एक ऐतिहासिक घटना घटित हुई। जहाँगीर का बड़ा लड़का खुसरो बागी हो गया तथा उसने अपने पिता के विरूद्ध बगावत कर दी। बाप बेटे में युद्ध हुआ । जिसमें खुसरो पराजित होकर आगरे से लाहौर की तरफ भाग खड़ा हुआ। रास्ते में वह गुरु अर्जुन देव के दरबार में दर्शनों हेतु रूका तथा उसने गुरुदेव के लंगर से भोजन किया। यह समाचार भी गुरुदेव के कटु आलोचकों द्वारा जहाँगीर के पास पहुँचा दिया गया कि अर्जुन देव ने तेरे बागी लड़के को पनाह दी है तथा उसकी सहायता कर रहे हैं। बस फिर क्या था ! जहाँगीर ने अपने लड़के खुसरो को पकड़कर हत्या

करवाने के पश्चात् लाहौर में गुरुदेव को आदि ग्रंथ सहित बुला भेजा। तब गुरुदेव अपने पाँच प्रमुख सेवकों की देख-रेख में 'आदि ग्रंथ' को साथ लेकर लाहौर पहुँच गये। तब जहाँगीर ने गुरुदेव पर प्रश्न किया कि तुमने मेरे बागी लड़के को पनाह दी है? इसके उत्तर में गुरुदेव ने कहा हमारा स्थान, गुरु बाबे नानक का घर है। यह फकीरों का स्थान होने के कारण सभी के लिए खुला है। यहाँ किसी को भी आने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। इसलिए खुसरो बागी था या नहीं। इस बात का हमारे से कोई संबंध नहीं है। अब उसका दूसरा प्रश्न था कि आपने जो ग्रंथ रचा है। उसमें इस्लाम की तौहीन है। उत्तर में गुरुदेव ने कहा प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती ग्रंथ जांचा जा सकता है। तब जहाँगीर बादशाह ने पोथी साहिब की वाणी पढ़वाकर सुनी। तब प्रथम बार यह रचना उस समय पढ़ने को मिली –

खाक नूर करदं आलम दुनिआइ।।
असमान जिमी दरखत आब पैदाइसि खुदाइ।।१।।

अंक : ७२३

यह हुक्मनामा/वाक्य जहाँगीर को बहुत अच्छा लगा परन्तु शेख अहमद सरहिंदी को अपनी बाज़ी हारती हुई अनुभव हुई और वह कहने लगा कि इस कलाम को इन लोगों ने निशानी लगा कर रखा हुआ है इसलिए उसी स्थान से पढ़ा है। अत: किसी दूसरे स्थान से पढ़कर देखा जाए। इस पर जहाँगीर ने अपने हाथों से कुछ पृष्ठ पलट कर दुबारा पढ़ने का आदेश दिया।

इस बार भी जो हुक्म आया वह इस तरह है –

अवलि अलह नूर उपाइआ कुदरति के सभ बंदे।।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ को भले कउन मंदे।।

अंक १३४९

इस शब्द को श्रवण कर जहाँगीर प्रसन्न हो गया। परन्तु दुष्ट जुण्डली ने दुबारा कह दिया कि यह कलाम भी इन लोगों ने कण्ठस्थ किया मालूम पड़ता है। इसलिए किसी ऐसे (आदमी) व्यक्ति को बुलाओ जो गुरमुखी अक्षरों का ज्ञान रखता हो, ताकि उससे इस कलाम के बारे ठीक पता लग सके।

तब एक गैर-सिख व्यक्ति (आदमी) को बुलाया गया जो कि गुरमुखी पढ़ना जानता था। उसको (गुरु) ग्रंथ साहिब में से पाठ पढ़ने का आदेश दिया गया। उस व्यक्ति ने जब (गुरु) ग्रंथ साहिब से पाठ पढ़ना शुरू किया। यह निम्नलिखित हुक्मनामा (वाक) आया –

बिसर गई सभ ताति पराई जब ते साध संगति मोहि पाई।।

अंक : १२९९

इस हुक्मनामे को सुनकर जहाँगीर पुर्णत: संतुष्ट हो गया किन्तु जुण्डली के लोग पराजय मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा ठीक है परन्तु इस ग्रंथ में हज़रत मुहम्मद साहिब तथा इस्लाम की तारीफ लिखनी होगी। इसके उत्तर में गुरुदेव जी ने कहा कि इस ग्रंथ में साम्प्रदायिक निरपेक्षता तथा समानता को आधार मानते हुए इलावा किसी व्यक्ति विशेष की प्रशंसा नहीं लिखी जा सकती तथा ना ही किसी विशेष समप्रदाय की स्तुति लिखी जा सकती है। इस ग्रंथ में केवल निराकार परमात्मा की ही स्तुति की गई है। जहाँगीर ने जब यह उत्तर सुना तो वह शान्त हो गया। परन्तु शेख अहमद सरहिंदी तथा शेख फरीद बुखारी जोकि पहले से आग बबूले हुए बैठे थे। उनका कहना था कि यह तो बादशाह की तौहीन है और (गुरु) अरजन की बातों से बगावत की बू आती है। इसलिए इसको माफ नहीं करना चाहिए। इस प्रकार चापलूसों के चुंगल में फंसकर बादशाह भी गुरुदेव पर दबाव डालने लगा कि उनको उस (गुरु) ग्रंथ (साहिब) में हज़रत मुहम्मद साहिब और इस्लाम की तारीफ में ज़रूर कुछ लिखना चाहिए। गुरुदेव ने इस पर अपनी असमर्थता दर्शाते हुए स्पष्ट इंकार कर दिया। बस फिर क्या था। दुष्टों को अवसर मिल गया। उन्होंने बादशाह को विवश किया कि (गुरु) अरजन बागी है जोकि बादशाह की हुक्म अदूली एवं गुस्ताखी कर उसकी छोटी सी बात को भी स्वीकार करने को तैयार नहीं इसलिए उसको मृत्यु दण्ड दिया जाना ही उचित है।

इस तरह बादशाह ने (गुरु जी) पर एक लाख रूपये दण्ड का आदेश दिया और वह स्वयं वहाँ से प्रस्थान कर सिंध क्षेत्र की ओर चला गया। क्योंकि वह जानता था कि चापलूसों ने उससे गलत आदेश दिलवाया है। बादशाह के चले जाने के पश्चात् दुष्टों ने लाहौर के गवर्नर मुर्तजा खान से माँग की कि वह (गुरु) अरजन से दण्ड की राशि वसूल करे। गुरुदेव जी ने दण्ड का भुगतान करने से स्पष्ट इंकार कर दिया क्योंकि जब कोई अपराध किया ही नहीं तो दण्ड क्यों भरा जाए? लाहौर की संगत में से कुछ धनी सिक्खों ने दण्ड की राशि अदा करनी चाही किन्तु गुरुदेव ने सिक्खों को मना कर दिया और कहा संगत का धन निजी कामों पर प्रयोग करना अपराध है। आत्म सुरक्षा अथवा व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए संगत के धन का दुरूपयोग करना उचित नहीं है।

गुरुदेव जी ने उसी समय साथ में आए हुए सिख सेवकों को आदेश दिया कि वे 'आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के स्वरूप की सेवा-सम्भाल करते हुए अमृतसर वापस लौट जाएं। गुरुदेव को अनुभव हो गया था कि दुष्ट जुण्डली के लोग, आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिब की वाणी में मिलावट करवा कर परमेश्वर की महिमा को समाप्त करने की कोशिश ज़रूर करेंगे, क्योंकि उनको इस्लामी प्रचार में लोकप्रिय वाणी बाधक प्रतीत होती थी। वास्तव में वे लोग नहीं चाहते थे कि जन साधारण की भाषा में आध्यात्मिक ज्ञान बाँटा जाए क्योंकि उनकी तथाकथित पीरी-फकीरी (गुरु डंम) की दुकान की पोल खुल रही थी।

देवनेत ही दुष्ट लोग अपने षड्यन्त्र में सफल नहीं हुए; वैसे अपनी ओर से उन्होंने कोई कोर कसर बाकी नहीं छोड़ी थी। इसलिए किसी नये कांड से पहले (गुरु) ग्रंथ साहिब के स्वरूप को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देना जरूरी था।

लाहौर का गवर्नर मुरतज़ा खान गुरुदेव जी के जीवन चरित्र से बहुत प्रभावित था। अत: वह कुछ निर्णय ले नहीं पा रहा था। तभी चन्दू दीवान ने उसकी समस्या हल कर दी कि मैं यह राशि जमा कर दूँगा। बशर्ते कि गुरुदेव को मेरे हवाले कर दें। मैं सोचूगां कि मैंने यह राशि अपनी बेटी के दहेज में दी है। चन्दू गुरु जी को घर ले जाकर मजबूर करने लगा कि मेरी लड़की का रिश्ता अपने लड़के के लिए स्वीकार कर लें। परन्तु गुरुदेव जी नहीं माने। इस पर गुरुदेव जी को लाहौर के शाही किले में लाया गया तथा वहाँ पर शेख अहमद के आदेश के अनुसार काज़ी ने उनको इस्लाम स्वीकार करने को कहा। नहीं तो शरहा कानून के अन्तर्गत मृत्यु दण्ड दिया जाएगा। परन्तु गुरु जी ने कहा मुझे दण्ड स्वीकार है। मैं इस नाशवान शरीर का मोह नहीं करता। मैं अपने विश्वास पर दृढ़ तथा अडिग हूँ। तब काज़ी के आदेश के अनुसार गाय की ताज़ी खाल मँगवाई गई। इससे पहले कि वह पहुँचे गुरुदेव जी को यातनाएँ देना प्रारम्भ कर दी गयीं। वास्तव में उनका उद्देश्य गुरुदेव जी को डरा-धमकाकर इस्लाम स्वीकार कराना था। परन्तु गुरुदेव जी विचलित नहीं हुए।

पहले उनको धूप से हुए गर्म लोहे की चादर पर बिठा दिया गया। उन दिनों जून का महीना था, अत: सख्त गर्मी पड़ रही थी। परन्तु गुरुदेव उस पर ऐसे विराजे जैसे किसी कालीन पर बैठे हो। जब मुसलमान सूफी फकीर साईं मिया मीर जी को सूचना मिली कि गुरु अर्जुन देव को इस भीषण गर्मी में गर्म लोहे पर कष्ट दिये जा रहे हैं तो वह तुरन्त गुरुदेव के सम्मुख उपस्थित हुए तथा विनती करने लगे कि हे गुरुदेव ! आप तो सम्पूर्ण कलाओं में सामर्थ्य हैं, सरब शक्तिमान हैं। फिर यह उपद्रव आप क्यों सहन कर रहे हैं। इस पर गुरुदेव जी ने उत्तर दिया - मैं इस सब कार्य में भी प्रकृति का खेल देख रहा हूँ। अत: मैं उस प्रभु के हुक्म में खुश हूँ। इस के साथ ही उनके शीश पर धूप से गर्म रेत डाली गई। जिससे गुरुदेव जी को नकसीर फूट पड़ी तथा वह बेसुध हो गये क्योंकि वह रात भर से भूखे प्यासे थे। जब दुष्टों ने देखा कि शरही कानून (यासा) के अन्तर्गत तो खून नहीं बहना चाहिए तो उन्होंने गुरु जी को होश में लाने के लिए पानी में डाल दिया। परन्तु उन की बेहोशी न टूटी। इस पर उन्होंने उस टब को उबाल दिया। उनका विचार था कि गर्म पानी के सेक से होश आएगी, परन्तु इस प्रकार गुरुदेव जी का देहान्त हो गया। तब दुष्टों ने उनके शव को रावी नदी में बहा दिया तथा अफवाह उड़ाई कि गुरुदेव जी ने स्नान करने की इच्छा प्रकट की थी। स्नान करने पर वह वहाँ से नहीं लौटे। दूसरी अफवाह उड़ाई कि गुरुदेव जी की मृत्यु के पीछे चन्दू की घरेलू शत्रुता है। उन्होंने तुजके-जहाँगीरी नामक पुस्तक में अपनी तरफ से निम्नलिखित इब्बारत लिख डाली । जिससे जनसाधारण भ्रम में पड़ गया।